जैन साहित्य एवं मंदिर उपकरण

हमारे यहाँ सभी प्रकार का दिगंबर जैन एवं भारत के सभी प्रमुख
धार्मिक संस्थानों का सत साहित्य एवं मंदिर में उपयोग हेतु उपकरण
और प्रभावना में बाटने योग्य सामग्री सीमित मूल्य पर उपलब्ध है

(पांडुशिला ,सिंघासन, छत्र, चवर प्रातिहार्य,जाप माला ,मंगल कलश, पूजा बर्तन ,चंदोवा,तोरण ,झारी ,

(शुद्ध चांदी के उपकरण आर्डर पर निर्मित किया जाता है)

नोट:-हमारे यहाँ घरो में उपयोग हेतु ,साधुओ के उपयोग हेतु ,
अनुष्ठानों में उपयोग हेतु शुद्ध घी भी आर्डर पर
उपलब्ध कराया जाता है

SOURABH KUMAR JAIN
9993602663
77229 83010
SOURABHJN1989@GMAIL.COM

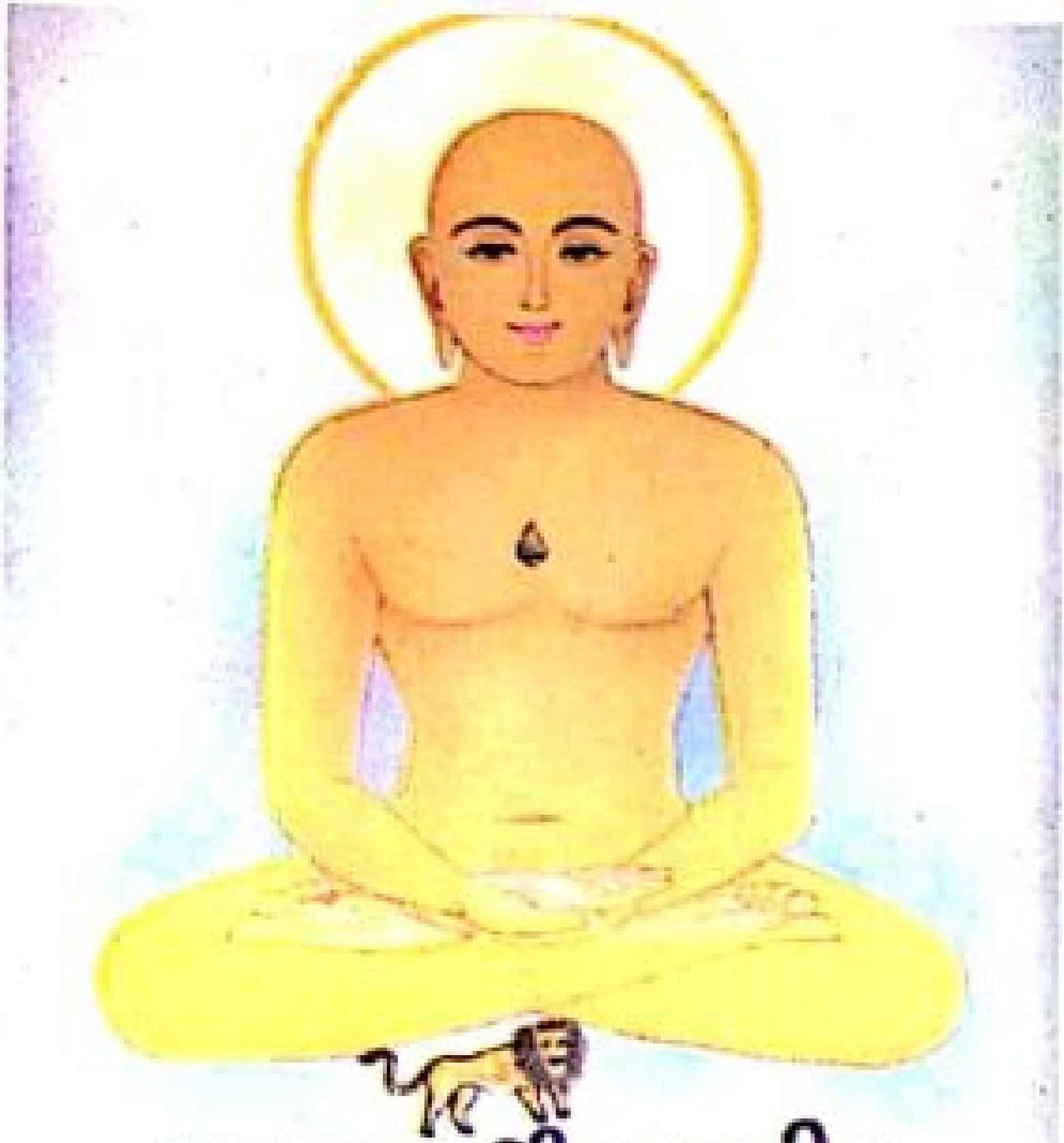

भगवान श्री महावीर

Scanned by CamScanner

श्रमण-जीवन

महा अभिनिष्क्रमण

आज मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी का दिन था। कुमार वर्द्धमान ने षष्ठ भक्त (दो दिन) का उपवास तप किया था। उनके महा अभिनिष्क्रमण के लिये चन्द्रप्रभा नामक शिविका (पालकी) तैयार की गई। दिन का चतुर्थ प्रहर आ गया। वर्द्धमान राजभवन से निकल चन्द्रप्रभा शिविका में आरूढ़ हुए। क्षत्रियकुण्ड के ईशान कोण में स्थित ज्ञातखण्ड उद्यान में विशाल जुलूस पहुँचा। अशोक वृक्ष के समीप शिविका रखी गयी। वर्द्धमान शिविका से नीचे उतरे। हजारों आँखें अपलक कुमार वर्द्धमान को देख रही थीं। उनका स्वर्ण कान्ति युक्त शरीर सुन्दर वस्त्रों, आभूषणों से सज्जित था, परन्तु दूसरे ही क्षण कुमार ने धीरे-धीरे शरीर पर से सभी आभूषण उतार दिये। बहुमूल्य वस्त्र भी उतार दिये। स्वयं इन्द्र ने भगवान के वस्त्र, आभूषण एवं केशों को एक स्वर्ण पात्र में ग्रहण किया। अब उनके गौर स्कन्ध पर देवेन्द्र द्वारा प्रदत्त एक हिम-सा शुभ्र उज्ज्वल देवदूष्य लहरा रहा था। (चित्र **M-13/1**)

पूर्व दिशा की ओर अभिमुख होकर वर्द्धमान ने अपने हाथों पंचमुष्टि लोच किया, फिर धीर गम्भीर स्वर में 'नमो सिद्धाणं'–सिद्ध भगवान को नमस्कार करते हुए संयम जीवन की प्रतिज्ञा ग्रहण की–"करेमि सामाइयं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि ····· मैं जीवन-भर के लिये समभाव की साधना स्वीकार करता हूँ। समस्त पापकारी प्रवृत्तियों को त्यागता हूँ।"

भगवान महावीर ने अपने साधक जीवन का कठोर संकल्प स्वीकारते हुए प्रतिज्ञा की–"मैं अपने साधक जीवन में प्रत्येक स्थिति में समभाव से रहूँगा। मानव, तिर्यंच, देव-दानव आदि द्वारा किया हुआ कोई भी परीषह/उपसर्ग चाहे जितना भी भीषण हो, मैं पूर्ण समभाव के साथ उन्हें सहन करूँगा। जब तक केवलज्ञान नहीं प्राप्त कर लूँ मेरे अविचल और अडिग चरण सिद्धि के आग्नेय पथ पर सतत अविराम बढ़ते रहेंगे ···।" सभी ने अत्यन्त भक्तिपूर्वक श्रमण वर्द्धमान को वन्दन किया। (चित्र **M-13/2**)

दरिद्रता धुल गई

दो दिन के निर्जल उपवास के साथ कठोर संयम व्रत का संकल्प ग्रहण करके महाश्रमण अपनी मस्ती में मस्त, स्वस्थ मन, वचन के साथ बिना रुके, बिना पीछे मुड़े सीधे, कंकरीले-पथरीले पथ पर चल रहे हैं। चलते ही जा रहे हैं।

पीछे से अचानक एक दीन स्वर पुकारता है। महाश्रमण वर्द्धमान के चरणों की गति मंद होती है। एक कृशकाय जर्जर देह वाला वृद्ध ब्राह्मण लाठी के सहारे तेज गति से चलता-हाँफता आकर महाश्रमण के चरणों में गिर पड़ता है। दयनीय चेहरे से वेदना बरस रही है। कंठ से दीन स्वर फूट रहा है–"कुमार वर्द्धमान ! मेरा भी उद्धार कर दो, मुझे भी कुछ देकर जाओ, मेरी दरिद्रता दूर कर दो।"

महाश्रमण महावीर ने देखा, ब्राह्मणकुण्ड निवासी सोम शर्मा है यह। किसी समय महाराज सिद्धार्थ के दरबार में आया करता था। दयालु महाराज धन-धान्य, वस्त्रादि से ब्राह्मण की भरपूर सहायता करते थे। तब सुखी था यह, किन्तु महाराज के स्वर्गवास के पश्चात् इसे कभी नहीं देखा ····· ।

Scanned by CamScanner

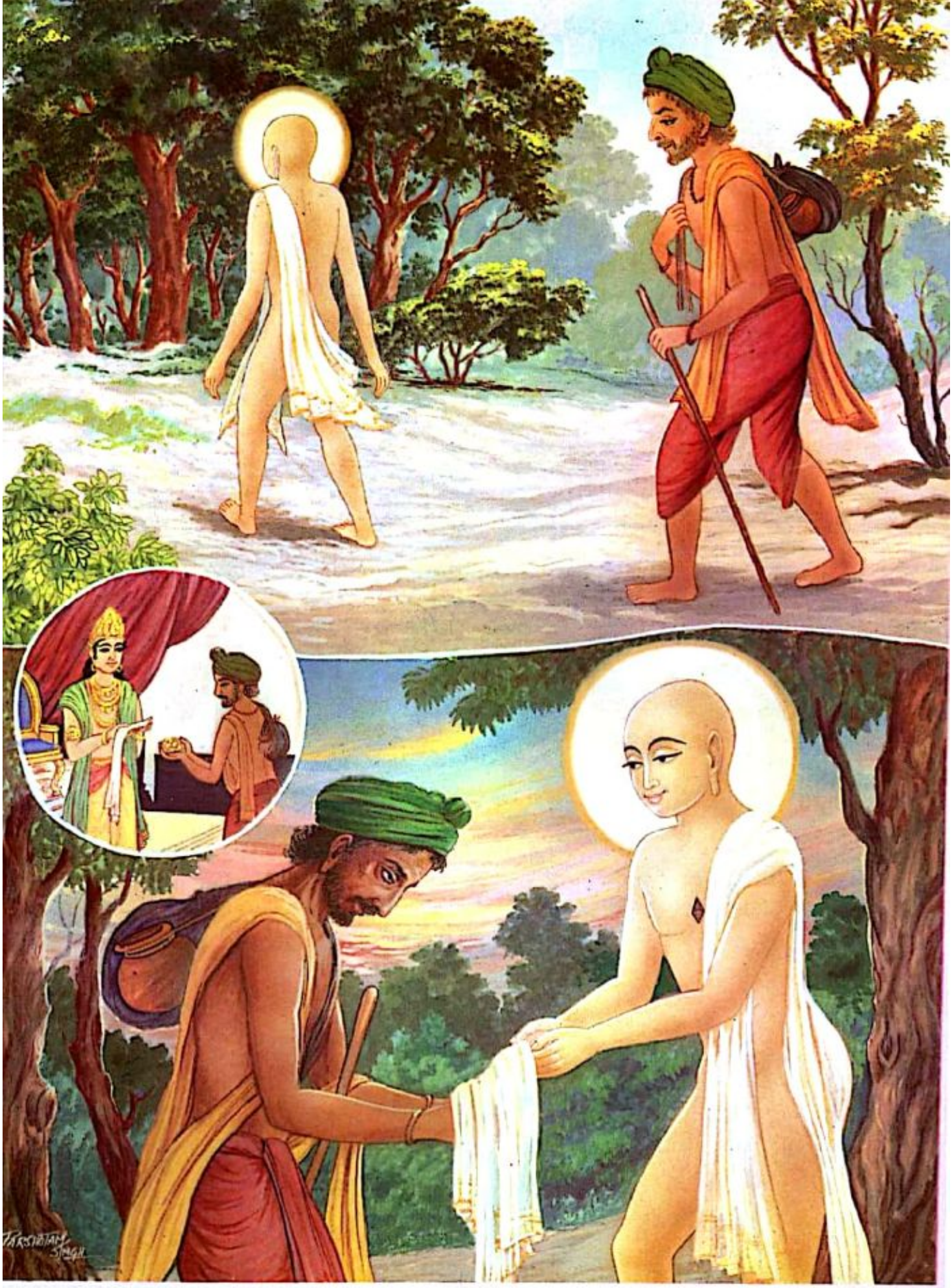

M 14 सोमशर्मा ब्राह्मण को वस्त्रदान।
Presenting the only peice of cloth to Brahman Somasharma.

Scanned by CamScanner

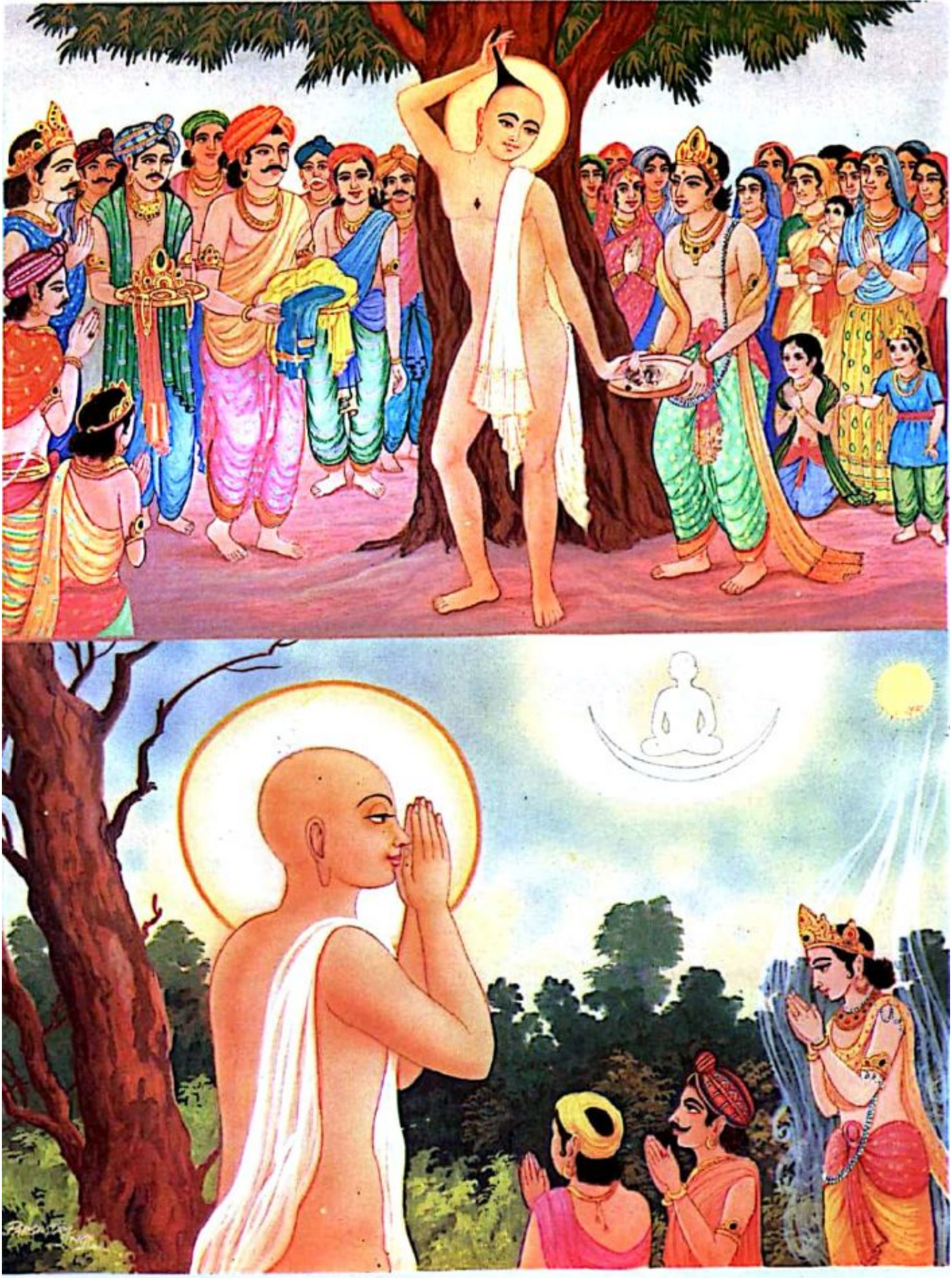

M 13 राजसी वस्त्राभूषण उतारकर केश लोच तथा सिद्धों को नमस्कार सहित कठोर दीक्षा संकल्प।
Plucking of hair after shedding regal dress and ornaments, and the tough resolution after salutations of Siddhas.

Scanned by CamScanner

सोम शर्मा कहता है–"राजकुमार ! आप तो जानते ही हैं, महाराज सिद्धार्थ के स्वर्गवासी होने के बाद मैं इधर-उधर जनपदों में भटकता रहा, देश-देश की धूल छानता रहा। दो वर्ष भटक-भटककर आज ही प्रातःकाल घर पर आया हूँ। आते ही मेरे परिवार वालों ने बताया–"आपने एक वर्ष तक दान की मेघ वर्षा की, कल्पवृक्ष की भाँति सभी को मनोवांछित दान दिया, परन्तु मैं भाग्यहीन बचा रहा, आपके दानी कर-कमलों से एक कण भी प्राप्त नहीं कर सका, कुमार ! घर पर आते ही पता चला कि आप आज ही सब राज-ऐश्वर्य त्यागकर श्रमण बन गये हैं.... कुमार वर्द्धमान ! मुझ दीन पर दया करो, मेरी दरिद्रता को अपने मेघवर्षी हाथों से धो डालो।"

महावीर का कोमल करुणाशील मानस ब्राह्मण की दयनीय दशा देखकर पसीज गया। अपने कंधे पर रखे देवदूष्य वस्त्र का एक पट (खण्ड) ब्राह्मण के हाथों में थमा दिया। देवदूष्य को पाकर ब्राह्मण की प्रसन्नता का आर-पार नहीं रहा।

इस वस्त्र को लेकर सोम शर्मा वस्त्र रफू करने वाले कारीगर के पास आकर इसका मोल पूछने लगा। रफूगर ने पूछा–"ब्राह्मण देवता ! यह दिव्य देवदूष्य आपको कहाँ मिला? यह तो उसका एक पट है, यदि एक पट और ले आओ, तो मैं इसका पूर्ण वस्त्र तैयार कर दूँगा। एक लाख स्वर्ण-मुद्रा में कोई भी श्रीमंत इसे खरीद लेगा।"

लालची सोम शर्मा दौड़कर पुनः श्रमण महावीर के निकट आया और उनके पीछे हो लिया। लगभग एक वर्ष बाद महावीर के कंधे से देवदूष्य का दूसरा टुकड़ा गिर पड़ा। ब्राह्मण ने चुपके से उसे उठा लिया और रफूगर के पास लौटा। सोम शर्मा ने वस्त्र पट ठीक करवाकर महाराज नंदिवर्धन को एक लाख स्वर्ण-मुद्रा प्राप्त करके दे दिया। (चित्र **M-14**)

प्रथम उपसर्ग : पुरुषार्थ का पाठ

श्रमण महावीर ज्ञातखण्ड वन से निकलकर एक लम्बे सँकरे सुनसान मार्ग पर चल पड़े तो चलते गये। रास्ते में एक छोटी-सी वस्ती "कूर्मारग्राम" आ गया जिसका नाम आज कामन छपरा है। सूर्यास्त बेला नजदीक जानकर भगवान महावीर इसी गाँव के बाहर एक वृक्ष के नीचे ठहर गये। दोनों हाथ घुटनों की तरफ नीचे झुकाए, नाक के अग्र भाग पर दृष्टि स्थिर कर भगवान महावीर वृक्ष की भाँति स्थिर ध्यानलीन हो गये।

एक ग्वाला अपने बैलों के साथ वहाँ आया। गो-दोहन का समय हो गया था, दूध दुहने के लिये उसे गाँव मे जाना था, बैलों को कहाँ बाँधे? वृक्ष के नीचे श्रमण महावीर खड़े दिखाई दिये, तो सोचा–"यह भिक्खु खड़ा है, काम बन गया। पास आया, बोला–"भिक्खु, मेरे बैलों का ध्यान रखना, अभी गो-दोहन कर आता हूँ।"

ग्वाला गाँव की तरफ चला गया। बैल घास चरते-चरते वन में दूर बहुत दूर निकल गये। कुछ समय के बाद ग्वाला अपना काम कर वापस लौटा, आस-पास बैल दिखाई नहीं दिये। श्रमण महावीर से पूछा–"भिक्खु, मेरे बैल कहाँ गये?" महावीर तो मौन, ध्यानस्थ। कुछ भी उत्तर नहीं मिला। उधर दोनों बैल घूमते-घामते भगवान महावीर के निकट ही आकर बैठ गये। प्रातः सूर्योदय का समय हुआ, ग्वाला भटकता-भटकता वापस

Scanned by CamScanner

भगवान महावीर के पास आ पहुँचा। दोनों बैल भी वहाँ बैठे–जुगाली कर रहे थे, ग्वाले को क्रोध आ गया। सोचा–"यह साधु नहीं, कोई चोर है।" आव देखा न ताव उसने बैलों को बाँधने की रस्सी से ही महावीर को पीटना शुरू कर दिया।

"ठहरो ! मूर्ख अज्ञानी, क्या कर रहे हो?" एक कड़कती रौबदार आवाज सुनाई दी। ग्वाला सहम गया। सामने खड़ा था एक दिव्य तेजस्वी पुरुष। ग्वाला उस देव पुरुष को देखते ही डर गया।

"तुम्हें मालूम है, जिन्हें तुम चोर समझकर बेरहमी से पीटते जा रहे हो, वो कौन हैं ? मूर्ख, कितना घोर अनर्थ कर रहे हो तुम ! ये तुम्हारे बैलों के चोर नहीं महाराज सिद्धार्थ के पुत्र–श्रमण महावीर हैं। महान् तपस्वी ध्यान योगी प्रभु महावीर।" (चित्र M-15/1)

ग्वाला गिड़गिड़ाकर प्रभु के चरणों में गिर गया। क्षमा माँगने लगा।

देवराज इन्द्र ने प्रभु महावीर की वन्दना की–"प्रभो ! ये अज्ञानी लोग आपको नहीं पहचान पाते, मूढ़तावश बार-बार आपको इस प्रकार की यंत्रणाएँ, पीड़ाएँ देने की धृष्टता करते रहेंगे। आप अकेले हैं। जंगल में ध्यान करते हैं, इस प्रकार की अप्रिय घटनाएँ बार-बार घटती रहेंगी।"

"प्रभु ! मुझे अनुमति दीजिए, मैं सतत आपश्री की सेवा में रहकर कष्टों का निवारण करता रहूँगा।"

महाश्रमण महावीर बोले–"देवराज ! आप जानते हैं, प्रत्येक साधक स्वयं के ही पुरुषार्थ, पराक्रम-बल वीर्य के भरोसे कर्म ज्ञान और निर्वाण लक्ष्मी को प्राप्त करता है दूसरों के सहारे नहीं ....।"

श्रद्धाभिभूत देवेन्द्र श्रमण महावीर की वन्दना कर लौट गये। (चित्र M-15/2)

शूलपाणि यक्ष का उपसर्ग

भगवान महावीर वेगवती नदी के तट पर बसे एक सुनसान छोटे से गाँव में पहुँचे। उसके आस-पास का वातावरण बहुत ही भयावह, रौद्र और हृदय को कँपा देने वाला था। गाँव के बाहर सूखी नदी के किनारे एक छोटी-सी टेकरी थी, उस टेकरी पर शूलपाणि यक्ष का मन्दिर था। उसके आस-पास अनेकों नर-कंकाल पड़े मौत को भी डरा रहे थे। जगह-जगह हड्डियों के ढेर लगे थे। श्रमण भगवान महावीर ने उपयुक्त स्थान समझकर ठहरने के लिए ग्रामवासियों से अनुमति माँगी। तो एक वृद्ध व्यक्ति ने काँपते हुए कहा–"आपको मालूम है, यह उस शूलपाणि दैत्य का मंदिर है, जो मनुष्य की हड्डियों के ढेर पर खड़ा होकर अट्टहास करता है। जिस दुष्ट दैत्य ने वर्द्धमान नामक इस सुन्दर नगर को आज हड्डियों का किला "अस्थिकग्राम" बना दिया है, वह अपने मंदिर में रात को किसी भी मनुष्य को ठहरने नहीं देता। यदि कोई ठहर भी जाये तो वह प्रातः जीवित नहीं बचता। आप इस भय-भैरव व काल-कोठरी में किसलिए ठहरना चाहते हैं?

श्रमण महावीर स्वयं अभय थे, इस धरती पर भय की जड़ काटकर अभय का कल्पवृक्ष उगाना चाहते थे, इसलिए इस भय-भैरव स्थान को ही उन्होंने चुना और संध्या होते-होते वे यक्ष मन्दिर के एक भाग में ध्यान-मुद्रा में खड़े हो गये।

रात्रि होते ही भयंकर हुँकार करता हुआ, एक हाथ में त्रिशूल लिये शूलपाणि यक्ष मन्दिर के अहाते में प्रकट हुआ।

Scanned by CamScanner

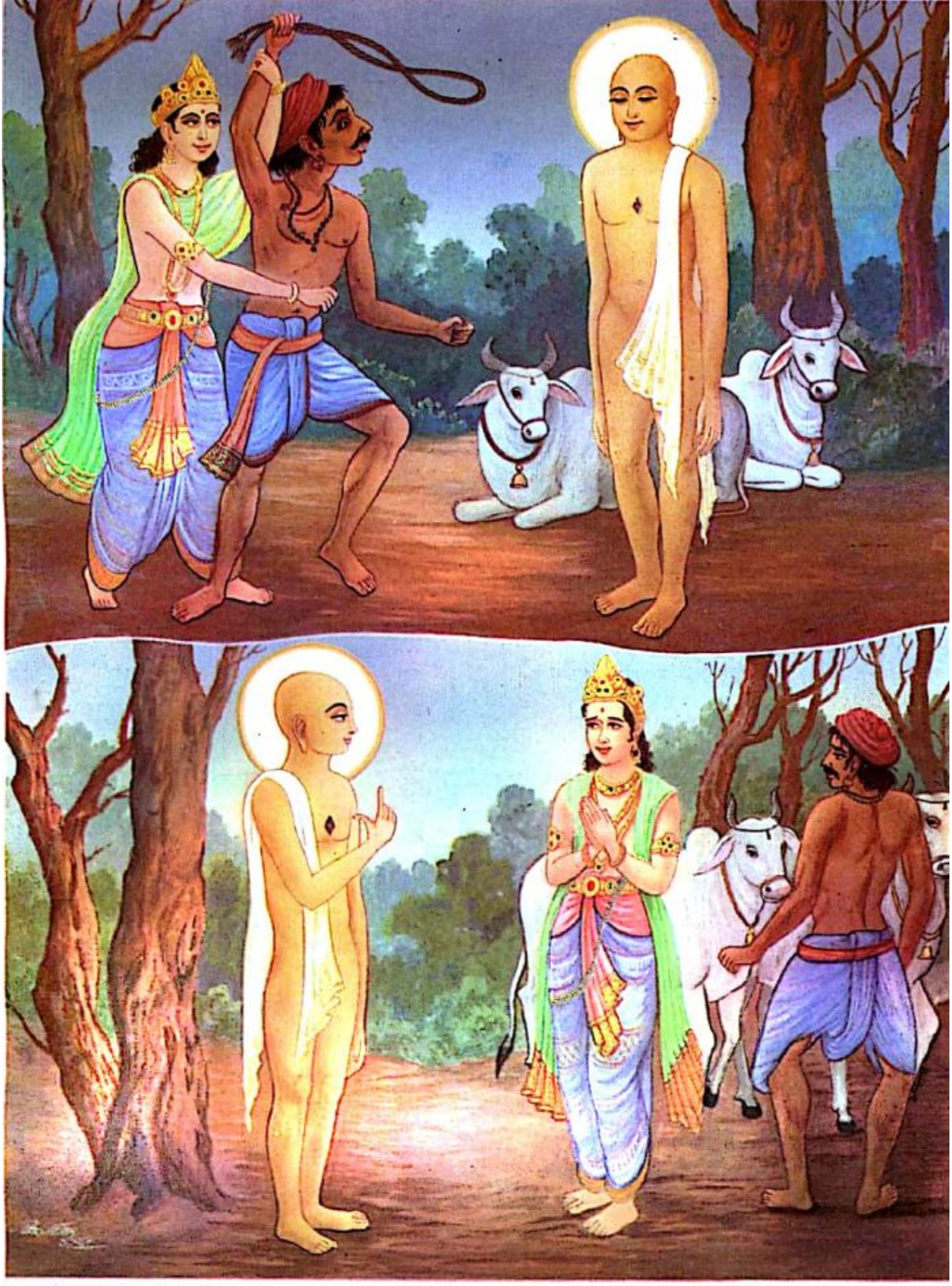

M 15 (१) ग्वाले द्वारा रस्सी से भगवान को उपसर्ग, इन्द्रदेव द्वारा बचाव (२) इन्द्र के सेवा प्रस्ताव का श्रमण महावीर द्वारा अस्वीकार।
(1) Indra interfering in the infliction by the cowherd
(2) Bhagavan Mahavir rejecting Indra's offer to provide protection.

Scanned by CamScanner

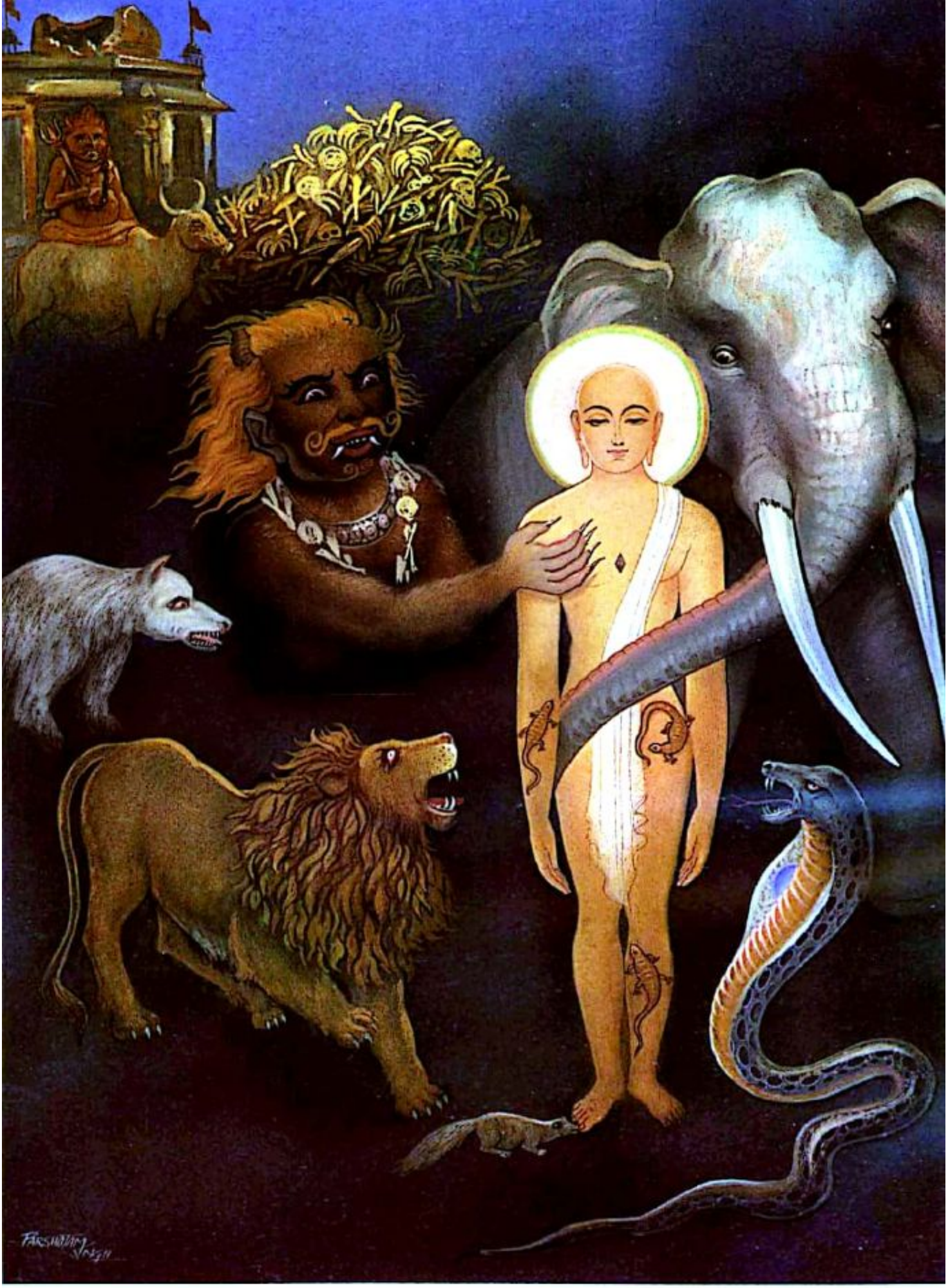

M 16 शूलपाणि यक्ष द्वारा भयावने उपसर्ग।
Fearsome afflictions by Shulpani

Scanned by CamScanner

शूलपाणि ने अपना विकराल रूप फैलाया, तीखे दंतशूलों वाला एक मदोन्मत्त हाथी चिंघाड़ता हुआ आया, महावीर पर दाँतों का प्रहार किया, सूँड से पकड़कर गेंद की भाँति ऊपर उछाल दिया। पाँवों के नीचे रौंद डाला।

फिर पिशाच का रूप धारण कर तीखे-तीखे नाखून और दाँतों से महावीर के शरीर को नोंचने लगा, अट्टहास करके भयभीत करने का प्रयास किया।

भयंकर काले नाग का रूप धारण कर विष उगलती फूत्कारें कीं, जहरीले डंक मारे। फिर सिंह, भालू, नेवला, बिच्छू, जंगली छिपकलियाँ आदि भयानक रूप बनाकर अनेक प्रकार के उपसर्ग किये।

अबकी बार शूलपाणि ने एक विचित्र विकुर्वणा की। अपनी वैक्रिय शक्ति से महावीर के आँख, कान, नाक, सिर, दाँत, नख और पीठ इन सात कोमल स्थानों में भयंकर दर्द पैदा किया, ऐसा प्राणहारी असह्य दर्द कि सामान्य मनुष्य तो तड़पता हुआ मृत्यु की गोद में समा जाये। इस प्रकार रात के दो प्रहर तक महावीर को भयानक से भयानक कष्ट देते हुए यक्ष शूलपाणि थक गया, परन्तु महावीर चलित नहीं हुए। (चित्र **M-16**)

सहसा शूलपाणि के हृदय-पटल पर, श्रमण महावीर की दिव्य ध्यान शक्ति का आलोक पड़ा। उसका क्रोध शान्त हो गया। शुभ भाव धारा उमड़ने लगी। उसने हाथ जोड़े, सिर झुकाया, प्रभु के पावन चरणों का स्पर्श पाते ही उसकी बुद्धि का बन्द द्वार खुल गया।

"क्षमा करो प्रभु ! मेरा अपराध क्षमा करो। मैंने आपको पहचाना नहीं, क्रोध एवं क्रूरता का काला परदा मेरी बुद्धि पर जो गिर गया था।" शूलपाणि के मुख से पश्चात्ताप की भाषा निकलने लगी।

शान्त रस निमग्न प्रभु के नयन विकसित हुए, वाणी मुखर हुई–"शान्त हो जाओ, शूलपाणि ! मन से क्रूरता और घृणा का जहर निकाल दो, तभी तुम्हें शान्ति मिलेगी, अभय मिलेगा। प्रेम से प्रेम मिलता है, क्रोध से क्रोध बढ़ता है। क्रोध की विष बेल को समाप्त करो, सबको अभय दो, तुम भी सदा के लिए अभय हो जाओ।"

भगवान महावीर के उद्‌बोधक वचनों से शूलपाणि का हृदय सदा-सदा के लिए शान्त हो गया।

वर्षावास के साढ़े तीन मास तक यक्ष शूलपाणि भगवान महावीर की सेवा करता रहा।

अमृतयोगी अणगार

शूलपाणि यक्ष के अस्थिकग्राम से प्रस्थान करके श्रमण महावीर श्वेताम्बिका नगरी की तरफ आगे बढ़े। मार्ग में एक भयानक सुनसान वीरान जंगल पड़ता था।

कुछ ग्वाल-बाल, जो जंगल में अपनी भेड़-बकरियाँ चरा रहे थे, महावीर को उस सुनसान पथ पर जाते देखा तो खूब जोर से पुकारने लगे–"साधु बाबा, रुक जाना, यह रास्ता बड़ा भयानक है, इस रास्ते पर दृष्टिविष कालिया नाग रहता है। उसकी जहरीली फुंकारों से पेड़-पौधे भी भस्म हो जाते हैं, उड़ते पक्षी तड़फड़ाकर गिर जाते हैं, मनुष्य खड़े-खड़े ही लुढ़क जाते हैं, इधर मत जाना, दूसरे रास्ते जाना बाबा।"

ग्वाल-बालों की भय भरी पुकार महावीर के कानों में पड़ी, उन्होंने स्मित भाव के साथ अभय मुद्रा वाला हाथ उठाया। धीर गंभीर गति से चलते हुए महावीर नागराज की बाँबी के निकट पहुँच गये। आस-पास अनेक पशु-पक्षियों व मनुष्यों के कंकाल पड़े थे, वृक्ष सूखकर ठूँठ बन गये थे। बाँबी के ठीक पास में उजड़ा-सा

Scanned by CamScanner

देवालय था। उसी देहरे के पास में महावीर जाकर खड़े हुए और सूर्य के सामने भुजाएँ सीधी लटकाकर नाक के अग्र भाग पर दृष्टि स्थिर करके ध्यान में लीन हो गये।

कुछ ही देर में फुंकारता हुआ विशालकाय कृष्ण नाग अपनी बाँबी से बाहर निकला। अपनी जहरीली लाल आँखों से उसने महावीर को देखा, अग्नि पिंड से जैसे तेज ज्वालाएँ निकलती हैं, वैसी ही उसकी विष बुझी आँखों से जहरीली ज्वालाएँ निकलने लगीं; भयंकर फुँकारें करने लगा, परन्तु महावीर पर तो कोई प्रभाव नहीं हुआ।

दूसरी बार पुनः सूर्य के सामने देखकर नाग ने जहरीली तीक्ष्ण दृष्टि महावीर पर टिकाई, फुंकारें मारीं, परन्तु अब भी स्थिर।

क्रोधाविष्ट नागराज ने तीसरी बार भी डंक मारा। जहरीली फुँकारें कीं। परन्तु उसके तीनों आक्रमण निष्फल हो गये। महावीर तो अभी भी बिना हिले-डुले शान्त खड़े थे। नाग आश्चर्य में डूबकर देखने लगा। यह क्या? जहाँ डंक मारा था, उस अँगूठे से रक्त के स्थान पर श्वेत दूध की धार बह रही है ..... ?

भगवान अविचल खड़े हैं, चेहरा गुलाब जैसा मधुर मुस्कान के साथ खिल रहा है। आँखों से करुणा झर रही है।

नागराज चकित-भ्रमित देखता रहा। विचारों के जाल में उलझ गया। उसका क्रोध निष्फल क्यों होने लगा?

प्रशमरस निमग्न महावीर ने शान्त गंभीर स्वर में उद्‌बोधन दिया–"उवसम भो चंडकोसिया !" हे नागराज चंडकौशिक ! समझो, समझो। अब शान्त हो जाओ। तुम अपने पूर्व-जन्म का स्मरण करो। बार-बार क्रोध करके जीवन बर्बाद मत करो। क्रोध को शान्त करो। (चित्र **M-17**)

महावीर की अमृत भरी दृष्टि खुली, नागराज ने अपनी दृष्टि मिलाई, तो जैसे उसके हृदय में अपूर्व शान्ति-सी दौड़ने लगी, सचमुच जहर शान्त होता हुआ प्रतीत हुआ।

चंडकौशिक विचारों में गहरा खो गया, चेतना के पट खुलने लगे, उसे जाति-स्मरण ज्ञान हो गया।

पिछले दो जन्मों के चित्र नागराज की स्मृति में उभरने लगे, उग्र क्रोध और अत्यन्त आसक्ति के कारण जीवन में कितना संताप सहा? कितनी दुर्दशा हुई उसकी। विचार करते-करते नागराज का हृदय पश्चात्ताप से पिघलने लगा।

नागराज की अंतश्चेतना जाग गई। मन शान्त हो गया। प्रभु के चरणों का स्पर्श करके नागराज ने संकल्प किया–"प्रभु ! अब मैं जीवन-भर किसी की तरफ दृष्टि उठाकर भी नहीं देखूँगा। न कुछ खाऊँगा। न पीऊँगा। बस, बिल में मुँह डालकर शान्त समाधि की स्थिति में आपके चरणों की छाया में पड़ा रहूँगा। तीन जन्मों के पापों का प्रायश्चित्त कर अब जीवन सुधारूँगा।"

नागराज को शान्त हुआ देखकर आस-पास के गाँवों से स्त्री-पुरुषों के झुण्ड के झुण्ड आने लगे, खीर, दूध चढ़ाकर नाग बाबा की पूजा करने लगे। परन्तु नाग देवता तो अपने बिल में मुँह करके शान्त समाधि लीन थे। उसने मन ही मन अनशन का संकल्प ग्रहण कर लिया। भूख-प्यास, सर्दी की पीड़ा सहता रहा,

Scanned by CamScanner

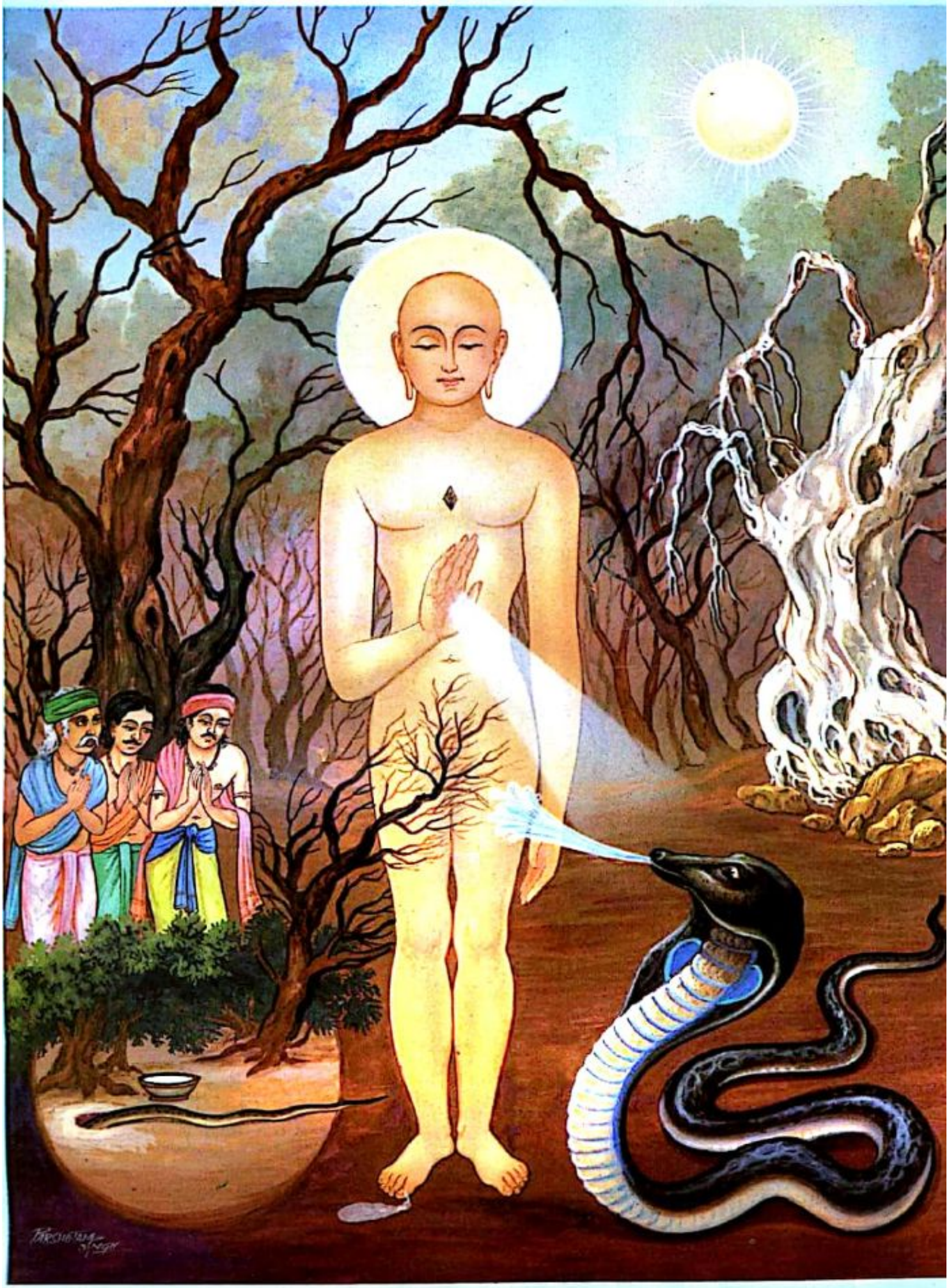

M 17 चंडकौशिक नाग का उपसर्ग।
Affliction by serpent Chanda Kaushik.

Scanned by CamScanner

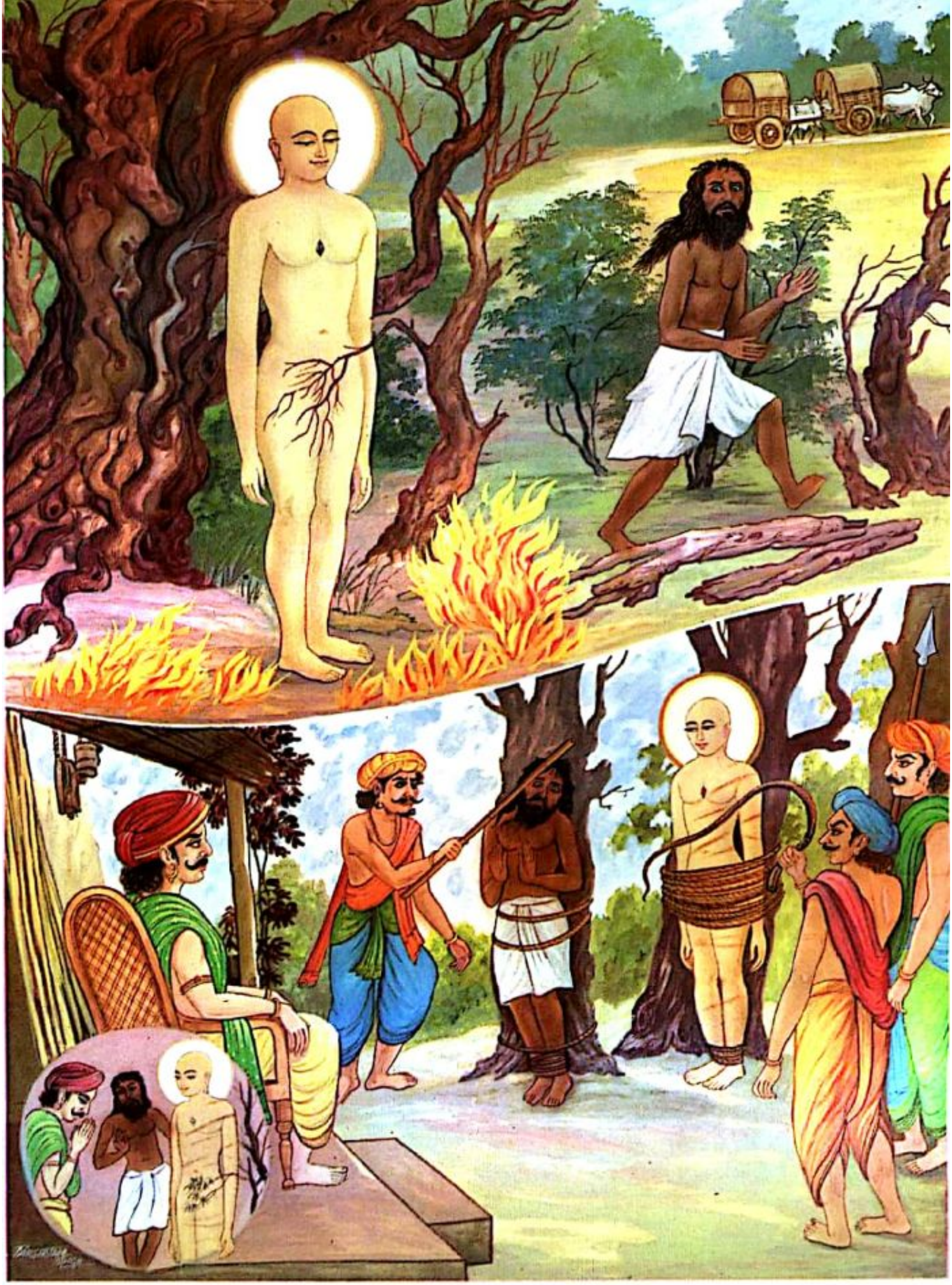

M 18 (१) अग्नि लपटों के बीच अकम्प श्रमण महावीर (२) कालहस्ती द्वारा उत्पीड़न।
(1) Shraman Mahavir unmoved by flames (2) Torture by Kalahasti.

Scanned by CamScanner

चींटियों के काटने से असह्य वेदना हो रही थी, उसका शरीर छलनी जैसा हो गया, परन्तु फिर भी उसे खीझ तक नहीं आयी। पन्द्रह दिन बाद शरीर त्यागकर नागराज चंडकौशिक सहस्रार स्वर्ग में देवता बना।

अग्नि ज्वालाएँ शान्त हो गईं

एक बार श्रावस्ती से विहार कर श्रमण महावीर हलिद्दुग (हलेद्दुग) गाँव की ओर जा रहे थे। मार्ग में एक विशाल वट वृक्ष दिखाई दिया। ध्यान के लिए उपयुक्त स्थान देखकर भगवान रात्रि में उसी वृक्ष के नीचे ध्यान प्रतिमा में स्थिर हो गये। शीत ऋतु का समय था, ठंडी तेज हवाएँ चल रही थीं। गौशालक भी साथ था, वह शीत से घबराकर वृक्ष की ओट में बैठ गया। रात में इस मार्ग से गुजरने वाले यात्रियों ने भी वृक्ष के नीचे विश्राम किया, भोजन आदि बनाने के लिए उन्होंने आस-पास से घास, लकड़ियाँ आदि एकत्र करके आग जलाई। भोजन पकाया और फिर रात-भर आग तापते रहे। प्रातःकाल होने पर यात्रियों का समूह आगे चल पड़ा, आग जलती रही। हवा के वेग से आग की लपटें बढ़ती-बढ़ती जहाँ महाश्रमण महावीर खड़े थे, वहाँ तक आ गईं। गौशालक चिल्लाया–"देवार्य, हटो यहाँ से, आग बढ़ती आ रही है।" परन्तु प्रभु तो आत्मलीन थे। आग की लपटें बढ़ती हुई भगवान के पैरों तक आ गईं। पैरों की चमड़ी झुलसने लगी, परन्तु फिर भी ध्यान के महासागर में निमग्न प्रभु को बाह्य वेदनाएँ विचलित नहीं कर सकीं। कुछ देर बाद आग स्वतः शान्त हो गई। (चित्र M-18/1)

कालहस्ती द्वारा दारुण यंत्रणा

एक बार महाश्रमण वर्द्धमान ने कलम्बुका सन्निवेश की सीमा में प्रवेश किया। यहाँ के अधिकारी थे मेघ और कालहस्ती। जनशून्य मार्ग में विहार करते हुए श्रमण महावीर को कालहस्ती ने देखा, तो उन्हें पकड़ लिया, पूछा–"तुम कौन हो?" प्रभु मौन रहे। गौशालक भी मौन रहा। कालहस्ती को शंका हुई–"यह पड़ौसी राज्य के गुप्तचर हैं?" उसने उन्हें कठोर बंधनों से बाँधकर बड़ी निर्ममता से बेंतों से पीटा और फिर सेवकों को आदेश दिया–"इन गुप्तचरों को बड़े भाई मेघ के पास ले जाओ, वे ही इनका मुँह खुलवायेंगे।"

सेवकों ने दोनों को चोरों की भाँति बाँधकर मेघ के सामने उपस्थित किया। मेघ को श्रमण वर्द्धमान की मुख-मुद्रा परिचित-सी लगी, उसे याद आया–"एक समय महाराज सिद्धार्थ के दरबार में कुमार वर्द्धमान को देखा था, शायद ये तो वे ही हैं।" वह निकट आया, उसे विश्वास हो गया, ये ही हैं कुमार वर्द्धमान जो श्रमण बन गये हैं। वह प्रभु के चरणों में गिर पड़ा। पश्चात्ताप के आँसू बहाते हुए क्षमा माँगी–"प्रभो ! आपको नहीं पहचानने से ही यह घोर अपराध हो गया? हम बड़े पापी हैं, जो आप जैसे महापुरुष को इतने कष्ट पहुँचाए। क्षमा कीजिए देवार्य !" (चित्र M-18/2)

मेघ के पश्चात्ताप पर प्रभु ने अभय मुद्रा में हाथ उठाया और आगे बढ़ गये।

अनार्य प्रदेश में विहार

साधनाकाल का पाँचवाँ वर्ष चल रहा था। श्रमण वर्द्धमान ने राढ (लाढ) प्रदेश की ओर विहार किया। इस प्रदेश के लोग श्रमण के आचार-विचार से तो क्या, श्रमण की वेश-भूषा से भी अपरिचित थे। नग्न श्रमण को खंडहरों व जंगलों में मूर्ति की तरह खड़ा देखकर वे आश्चर्यपूर्वक देखते रहते। पुकारने पर उत्तर नहीं मिलता तो वे झुँझलाकर लकड़ियों से भालों से, वेंत से, पत्थरों से उन पर प्रहार करते। कुछ लोग गीली बेंत

Scanned by CamScanner

से पीटते, जिनके लाल-लाल निशान उनकी चमड़ी पर उभर आते। शरीर पर घाव कर देते, माँस नोंच-नोंच डाल देते, फिर भी महाश्रमण मौन रहते, आँखें भी नहीं खोलते। कुछ लोग उन पर कीचड़ फेंकते, स्त्रियाँ उन पर घर का कूड़ा-कचरा फेंक देतीं, परन्तु महाश्रमण मौन ही रहते तो फिर घूर-घूरकर देखने लगतीं।

लोग उन्हें देखकर आँखें फाड़-फाड़कर घूरते, गाँव के शिकारी कुत्ते उन पर झपटते, काटने आते, कुछ लोग कुतूहलवश कुत्तों को छूछू करके काटने के लिए दौड़ाते। परन्तु श्रमण वर्द्धमान बोलते नहीं, उनकी तरफ देखते भी नहीं, आँखें नीचे किये अपने पथ पर बढ़ते चले जाते। तब कुछ लोग चिढ़कर गालियाँ देते। भगवान आसन लगाकर ध्यान करते तो लोग उनका आसन भंग करने के लिए उन्हें पकड़ कर पीटते और कपड़े की गठरी की तरह नीचे पटक देते। इस प्रकार अत्यन्त लोमहर्षक उत्पीड़न सहते हुए भी भगवान लगभग पाँच महीने तक उस प्रदेश में विचरते रहे। (चित्र **M-19**)

साधनाकाल के नौवें वर्ष में भगवान ने पुनः अनार्यभूमि में विहार किया और लगभग छह महीने तक उस वज्रभूमि में विचरण करते रहे। अनार्यभूमि में यह प्रथम चातुर्मास खंडहरों में, एवं वृक्षों के नीचे घूमते-घामते पूर्ण किया।

गौशालक की प्राण-रक्षा

एक समय सिद्धार्थपुर से कूर्मारग्राम के लिए विहार करते हुए प्रभु एक सघन जंगल को पार कर रहे थे। कूर्मग्राम के बाहर तापसों का कोई आश्रम था। गौशालक ने देखा–एक तपस्वी सूर्य के सामने दोनों हाथ जोड़कर तपस्या कर रहा है। उसकी लम्बी-लम्बी जटायें वट की शाखाओं की तरह नीचे लटक रही हैं। जटाओं से जुएँ निकलकर भूमि पर गिर रही हैं। धूप के कारण जुएँ अकुलाती हैं तो तपस्वी दया करके अपने हाथ से उन्हें उठाकर वापस जटा में रख लेता है।

गौशालक इस विचित्र दृश्य को देखकर हँसता रहा। वह तपस्वी के पास आया और बड़े फूहड़ ढंग से बोला–"अरे ओ जुओं के शय्यातर ! तू यह क्या तमाशा कर रहा है?"

गौशालक के कटु वचन सुनकर भी तपस्वी शान्त रहा। परन्तु बार-बार चिढ़ाने से तपस्वी का हृदय तिलमिला उठा। आँखों से अंगारे वर्षाते हुए उसने गौशालक की तरफ घूरकर कहा–"दुष्ट, मेरा नाम है वैश्यायन तापस ! ठहर ! तुझे अभी बताता हूँ" और तपस्वी ने सात-आठ कदम पीछे हटकर अत्यन्त क्रोधावेश के साथ मुँह से तेजोलेश्या निकाली। क्षण-भर में ही आग के गुब्बारे की तरह दहकती ज्वाला गौशालक की तरफ आयी, काले धुएँ के बादल उड़ने लगे। गौशालक भयभीत होकर भागा, दूर से ही चिल्लाने लगा–"देवार्य ! बचाओ, बचाओ, यह मुझे जला रहा है। भगवान महावीर ने मुड़कर पीछे की तरफ देखा तो, उनके करुणा द्रवित हृदय से सहज ही शीतल तेजोलेश्या का अमृत झरना फूट पड़ा। ज्यों ही अमिय दृष्टि से प्रभु ने उधर देखा, दहकती आग का धुआँ शान्त हो गया। गौशालक ने प्रभु के चरणों की शरण ली।

क्रोधाविष्ट तपस्वी ने जब अपनी तेजोलेश्या का प्रतिरोध देखा तो वह चकित हो गया–"कौन है यह मुझसे भी अधिक शक्तिशाली ?" तुरन्त ही महाश्रमण वर्द्धमान पर उसकी दृष्टि टिकी। उसने वहीं से नमस्कार किया–"प्रभो ! जान लिया आपकी महान् शक्ति का प्रभाव, जान लिया, क्षमा करें प्रभु ! मुझे नहीं पता था यह आपका शिष्य है।" गौशालक की जान में जान आ गई। उसने पूछा–"देवार्य ! यह जुओं का शय्यातर क्या बकवास कर रहा है?"

Scanned by CamScanner

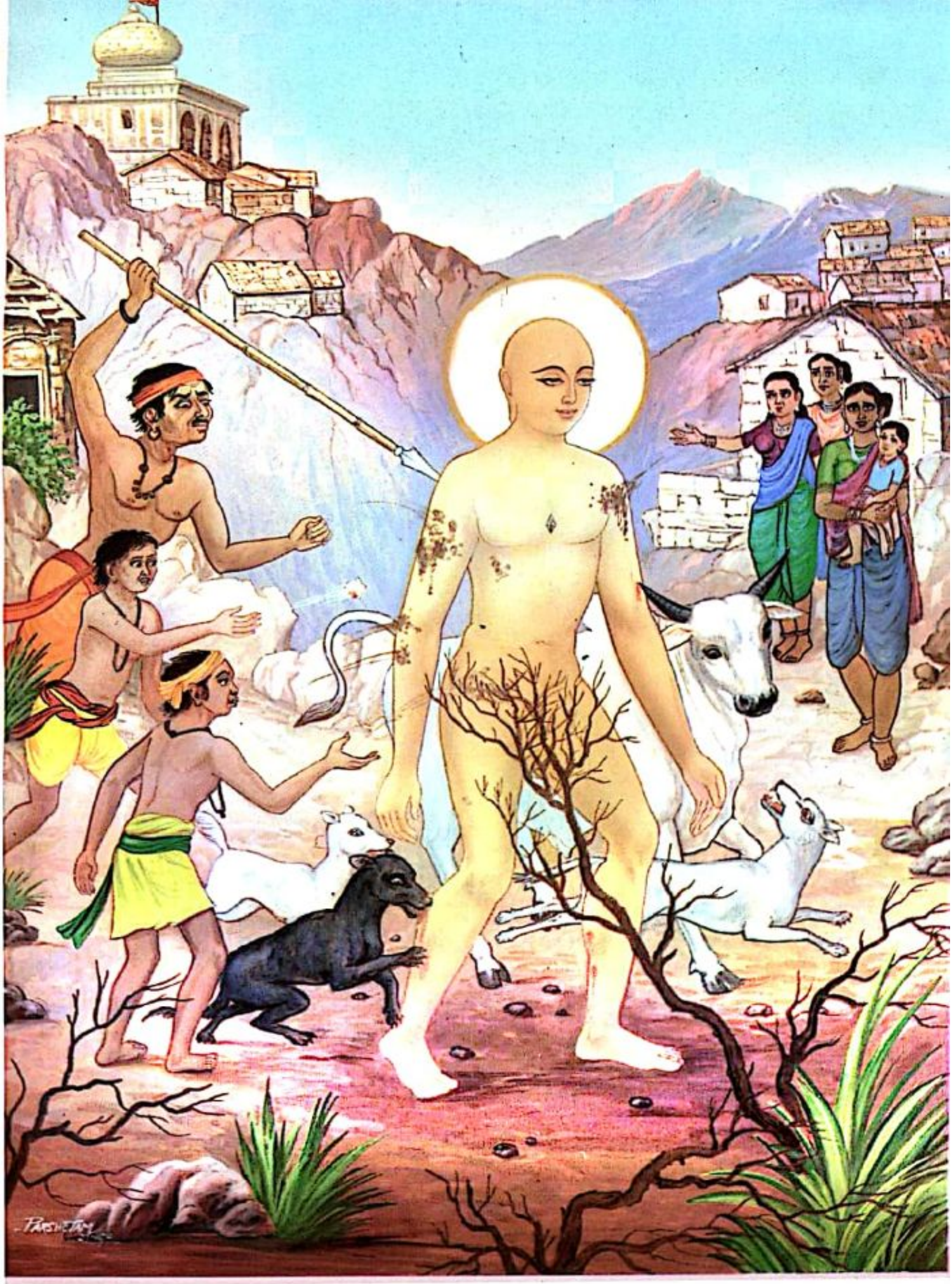

M 19 श्रमण महावीर को आदिवासियों द्वारा विविध उपसर्ग।
Ill treatment of Shraman Mahavir by rustic aborigines

Scanned by CamScanner

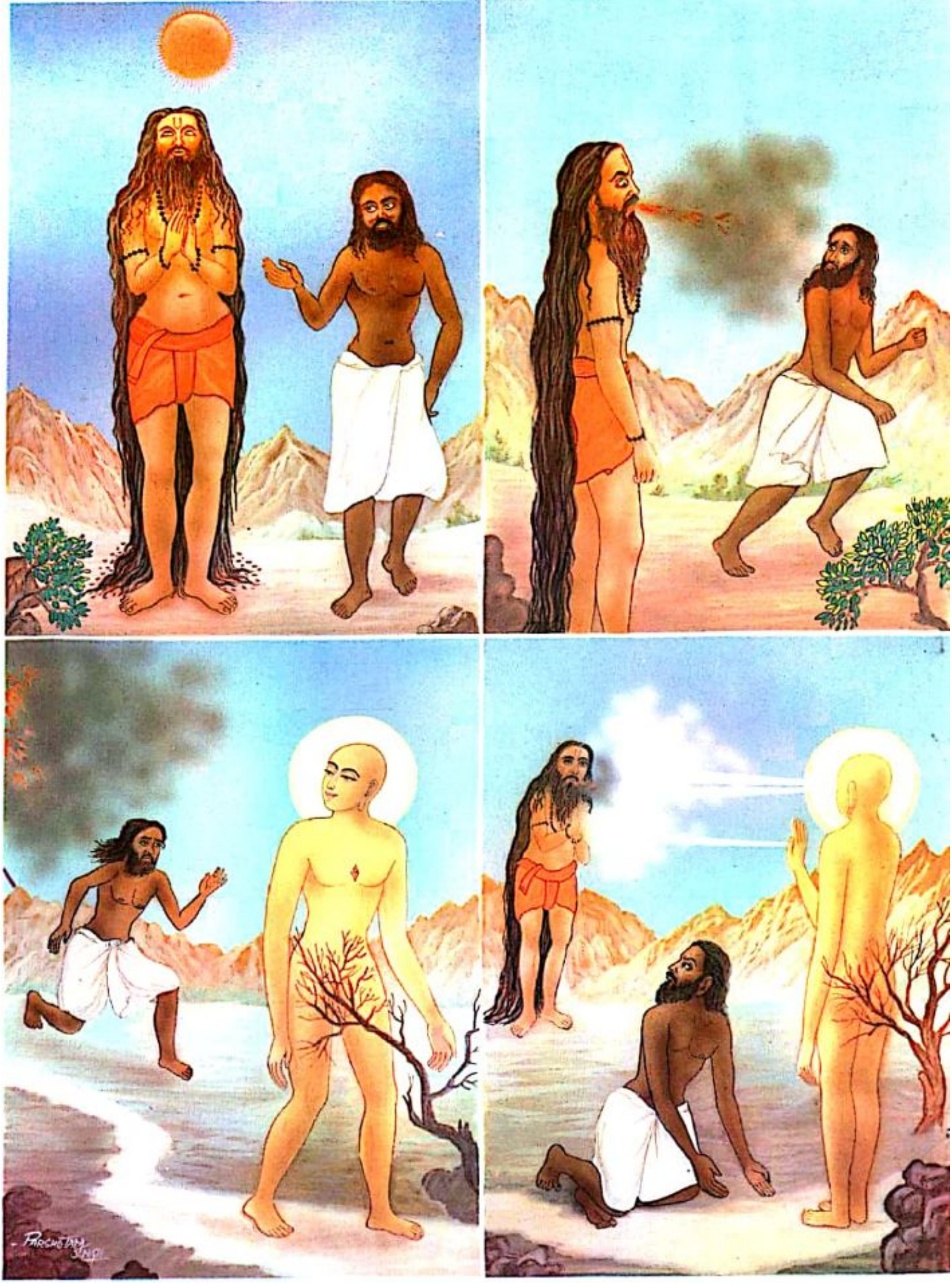

M 20 शीतल तेजोलेश्या द्वारा गौशालक की रक्षा।
Saving Gaushalak using his pacifying power.

Scanned by CamScanner

प्रभु ने कहा-"अभी वह अपनी तेजोलेश्या से तुझे भस्मसात् करने वाला था, किन्तु मेरी शीतललेश्या से अग्नि शान्त हो गई और तू बच गया...... ।" (चित्र **M-20**)

कटपूतना का उपसर्ग

साधनाकाल का छठा वर्ष चल रहा था। माघ का महीना, रोम-रोम कँपाने वाली तेज शीत हवाएँ चल रही थीं। रात्रि का शान्त समय, शालिशीर्ष नगर के बाहर एकान्त शून्य जंगल में भगवान महावीर कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यान योग में मग्न थे। अचानक कटपूतना नाम की एक व्यन्तरी उधर आई। भगवान महावीर को कायोत्सर्ग में खड़े देखा तो, पूर्व जन्मानुबंधी द्वेष भाव जाग उठा। उसने एक परिव्राजिका का विकराल रूप धारण किया, लम्बी-लम्बी जटाएँ फैलाईं और उन जटाओं में अत्यन्त शीतल पानी भरकर तेज धार से प्रभु के मस्तक एवं शरीर पर बरसाने लगी। सिर पर गिरता तेज धारायुक्त ठंडा पानी, इधर तूफानी ठंडी हवाएँ और उधर दिशाओं को कँपाने वाला क्रूर अट्टहास। घंटों और प्रहरों तक क्रूर राक्षसी ने भगवान को मर्मान्तक कष्ट दिये, उनकी ध्यान प्रतिमा भंग करने का असंभव से असंभव प्रयत्न किया, परन्तु प्रभु महावीर उसी प्रशान्त भावना और अविचल समाधि के साथ ध्यान में स्थिर लीन रहे। परम ध्यानलीनता एवं उत्कृष्ट परिणाम-विशुद्धि की स्थिति में पहुँचने पर भगवान को विशिष्ट लोकावधिज्ञान उत्पन्न हुआ। (चित्र **M-21/1**)

कारागार में बन्द

साधनाकाल के छठे वर्ष में प्रभु महावीर वैशाली के पूरब में स्थित विदेह भूमि के कूपिय सन्निवेश में गये। वहाँ पर उन्हें आरक्षकों ने पकड़ लिया। परिचय पूछा, प्रभु मौन धारण किये रहे, तो उन्होंने शत्रु का गुप्तचर समझकर बंधनों से बाँधकर कारागार में डाल दिया। कूपिय सन्निवेश में विजया और प्रगल्भा नाम की दो परिव्राजिकाएँ रहती थीं। उन्होंने सुना, एक गुप्तचर नग्न भिक्षु के रूप में पकड़ा गया है तो वे देखने के लिए आईं। परिव्राजिकाओं ने प्रभु महावीर को पहचान लिया, वे बड़ी व्यथित हो उठीं, राजपुरुषों को फटकारते हुए बोलीं-"कैसे राजपुरुष हैं आप ! चोर और साहूकार को नहीं पहचान पाते ? श्रमण और तस्कर में कोई भेद नहीं समझ सकते ? इनकी शान्त, प्रशान्त मुखमुद्रा तो देखो ! क्या कोई सामान्य पुरुष हैं ये ? तुम्हें पता होना चाहिए ये सिद्धार्थ राजा के पुत्र श्रमण वर्द्धमान हैं ! इन्हें कष्ट दे रहे हैं कहीं देवराज इन्द्र कुपित हो गये तो क्या दशा होगी आप लोगों की.... ?"

परिव्राजिकाओं द्वारा परिचय जानते ही राजपुरुषों ने बन्धनों से मुक्त कर प्रभु से क्षमा माँगी। प्रभु वहाँ से फिर आगे एकान्त स्थान की ओर चले गये। (चित्र **M-21/2**)

संगम द्वारा प्राणान्तक उपसर्ग

पेढाल नगर के बाहर पोलाश चैत्य में प्रभु ने "एक रात्रि की प्रतिमा" धारण की। इस अपूर्व प्रतिमा योग में प्रभु के तन-मन-बुद्धि और प्राण सभी स्थिर अचंचल-अप्रकम्प थे। प्रभु की उत्कृष्ट ध्यानलीनता देखकर मानव ही क्या, देवराज इन्द्र का हृदय भी गद्गद् हो उठा और भक्तिपूर्वक उनके स्वर फूट पड़े-"धन्य हैं प्रभु वर्द्धमान ! आज संसार में आप जैसा तपस्वी, धीर, वीर और सहिष्णु साधक दूसरा कोई नहीं है। मनुष्य तो क्या, देव दानव भी आपकी साधना को भंग नहीं कर सकते !..... धन्य है महाप्राण ! महाप्रभु !" देवराज इन्द्र अपने आसन से उठे और भक्तिपूर्वक प्रभु की वन्दना-स्तवना करने में मग्न हो गये।

Scanned by CamScanner

संगम नाम का एक क्रूर हृदय देव देवराज की प्रशंसा को चुनौती देता हुआ बोला–"यदि देवराज बीच में हस्तक्षेप न करें तो मैं श्रमण महावीर को ध्यानच्युत कर सकता हूँ। उनकी समाधि तोड़ सकता हूँ।"

देवराज मन मसोसकर मौन हो गये। भगवान चाहे भक्त की परीक्षा लें, या भक्त भगवान की, परीक्षा-परीक्षा ही है, परीक्षा के लिए दोनों को ही असह्य पीड़ाओं की अग्नि में तपना पड़ता है। फिर होनहार वलवान ..... ! देवराज मौन रहे, और संगम अपनी पूरी शक्ति बटोरकर उसी रात्रि को पोलाश उद्यान में एक रात्रि की प्रतिमा में स्थित भगवान महावीर की अग्नि-परीक्षा लेने आ धमका। संगम ने आते ही उपसर्गों का तूफान उठाया।

अचानक साँय-साँय की आवाज से दिशाएँ काँप उठीं। भयंकर धूल-भरी आँधी से महावीर के शरीर पर मिट्टी के ढेर जम गये। आँख, नाक, कान और पूरा शरीर धूल से दब गया, पर महावीर ने अपने निश्चय के अनुसार आँख की पलकें भी बन्द नहीं कीं।

फिर वज्र जैसे तीक्ष्ण मुँह वाली चींटियाँ चारों ओर से महावीर के शरीर को काटने लगीं।

फिर बिच्छुओं के तीव्र दंश प्रहार, नेवलों द्वारा माँस नोचना, भीमकाय विषधर सर्पों द्वारा शरीर पर लिपटकर जगह-जगह दंश मारना और उसके बाद तीखे दाँत वाले चूहे काट-काटकर महायोगेश्वर को त्रास देने लगे।

फिर जंगली हाथी ने दंतशूल से प्रहार कर महावीर को सूँड़ से पकड़कर गेंद की तरह आकाश में उछाल दिया, पैरों के नीचे मिट्टी की भाँति रौंद डाला।

अब एक भयंकर पिशाच अट्टहास से शून्य दिशाओं को भय-भैरव बनाता हुआ प्रभु के समक्ष आया।

तभी त्रिशूल जैसे तीक्ष्ण नखों वाला बाघ महावीर पर झपटा, वह स्थान-स्थान से माँस नोचने लगा, परन्तु प्रभु प्रस्तर-प्रतिमा की तरह अचल खड़े रहे।

महावीर दोनों पैर सीधे लटाये खड़े थे, संगम ने पैरों के बीच में आग लगा दी।

अंत में संगम ने माया रची, बसन्त ऋतु की मन्द और मादक बयार बहाई, भीनी-भीनी सुगन्ध ! शान्त वातावरण, मोर की मीठी-मीठी प्रणयवर्धक बोली, नूपुर की झंकार करती हुई अर्धवसना अप्सराएँ अपने माँसल कामोत्तेजक अंगों का प्रदर्शन कर काम-याचना करने लगीं, महावीर के शरीर से लिपटने लगीं। पर अनिमेष दृष्टि महावीर तो उसी प्रकार स्थिर खड़े रहे। इस प्रकार एक रात में २० प्रकार के प्रतिकूल-अनुकूल परिषह उत्पन्न करके संगमदेव थक गया किन्तु भगवान महावीर अपनी ध्यान चेतना में स्थिर रहे। (चित्र **M-22**)

शरण आया असुरराज

विन्ध्याचल पर्वतमाला में पूरण नाम का एक तापस रहता था। उसने बारह वर्ष तक कठोर बाल तप किया, फलस्वरूप वह असुर देवों की राजधानी चमरचंचा में चमरेन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही उसके मन में अपनी शक्ति और ऋद्धि का अभिमान जाग उठा। उसने ज्ञान-बल से इधर-उधर देखा कि संसार में मुझसे भी बढ़कर शक्ति और ऋद्धिशाली कोई है क्या? तो ठीक उसके सिंहासन के ऊपर सौधर्म स्वर्ग में देवराज शक्रेन्द्र आनन्द विलास करते दिखाई दिये। असुरेन्द्र ने अपने सामानिक देवों से पूछा–"यह कौन विवेकहीन पुण्यहीन अहंकारी देव है, जो मेरे मस्तक पर पैर किये, निर्लज्जतापूर्वक बैठा भोग-विलास कर रहा है?"

Scanned by CamScanner

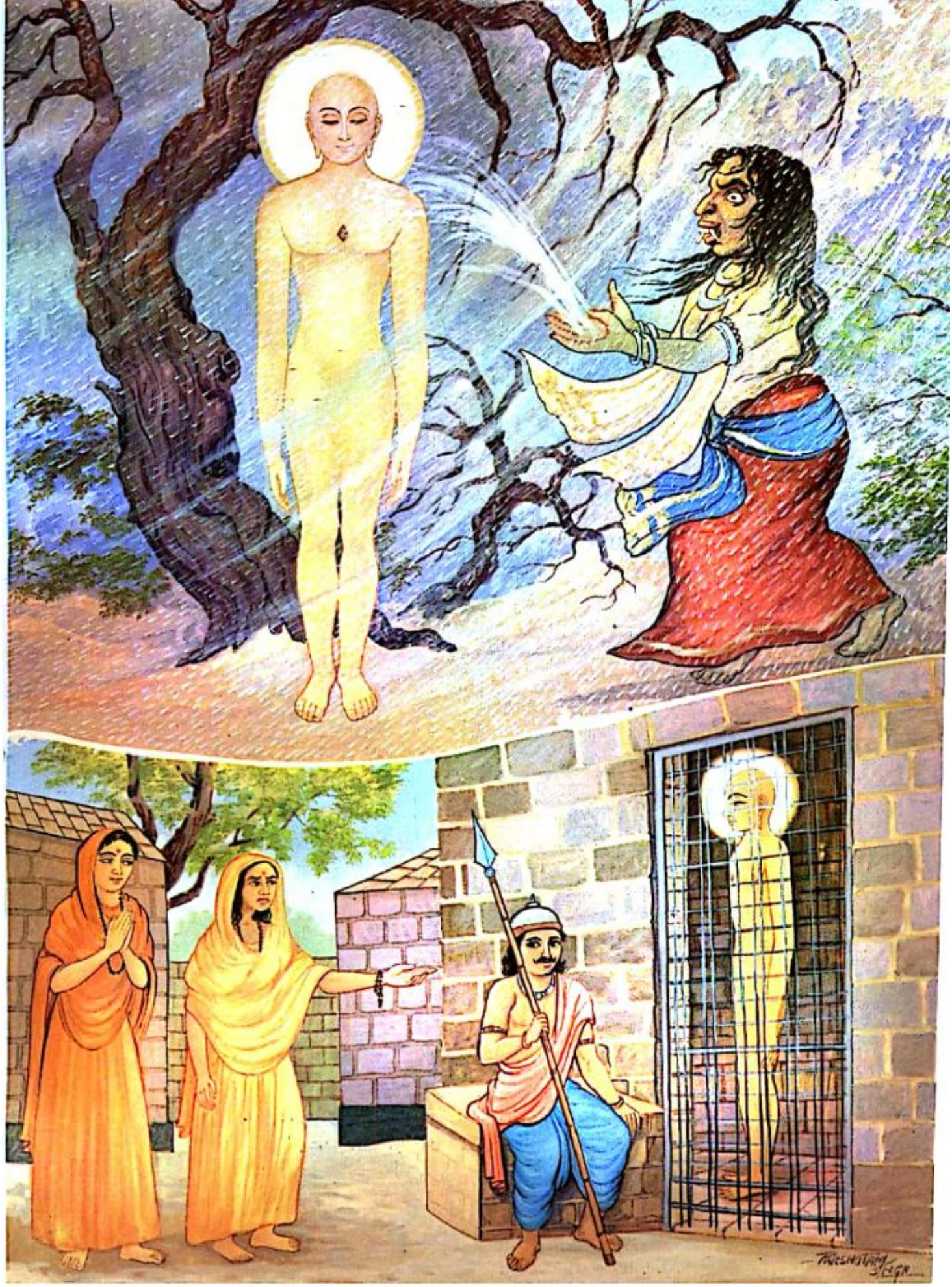

M 21 (१) कटपूतना द्वारा उपसर्ग (२) परिव्राजिका विजया व प्रगल्भा द्वारा श्रमण महावीर को कारागार से मुक्त कराना।
(1) The afflictions by Katputana (2) The release of Shraman Mahavir from the prison by mendicants Vijaya and Pragalbha

Scanned by CamScanner

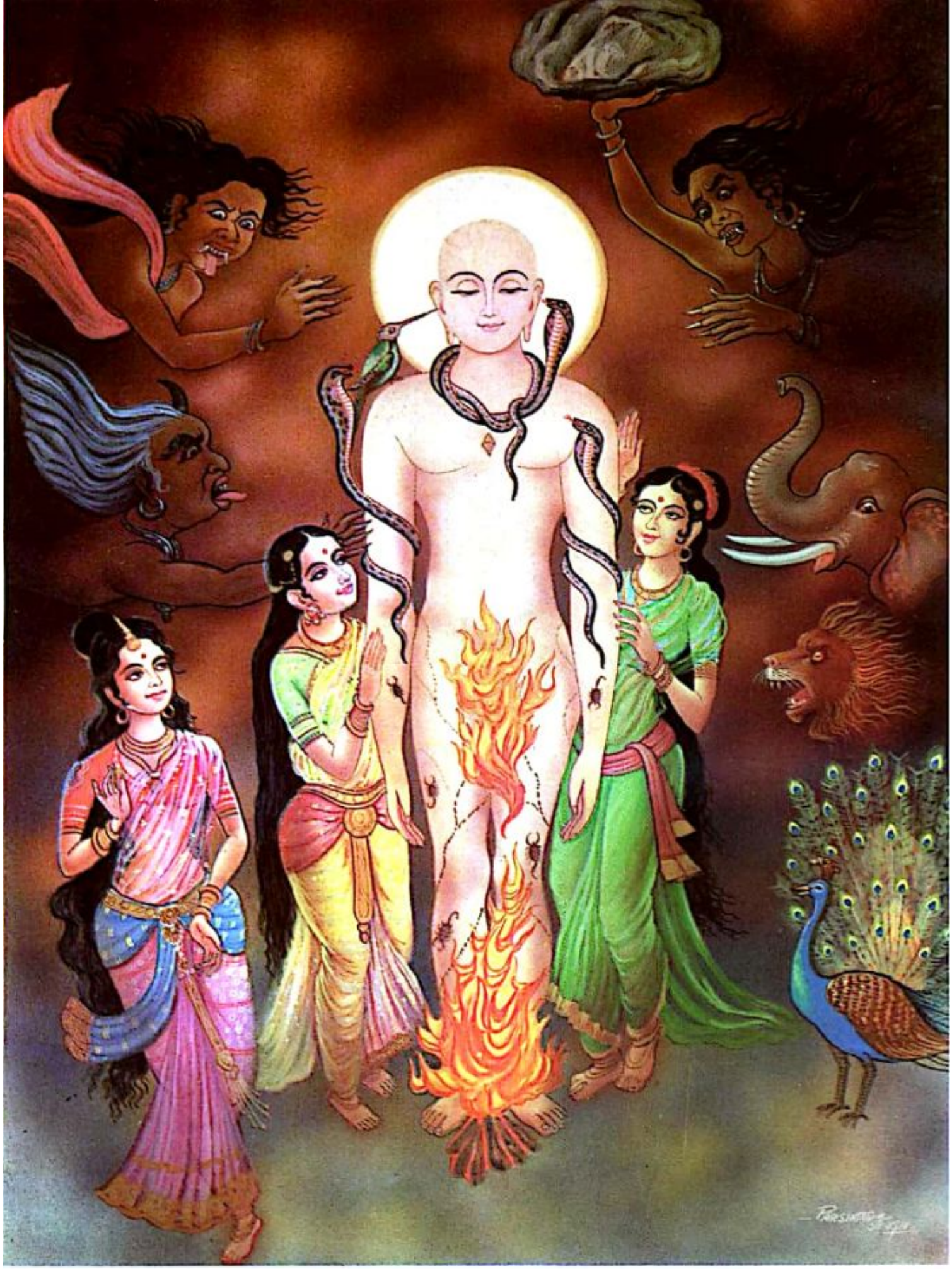

M 22 संगम देव द्वारा एक ही रात्रि में २० भीषण उपसर्ग।
Inhuman tortures by god Sangam

Scanned by CamScanner

सामानिकों ने निवेदन किया–"महाराज ! ये सौधर्मकल्प के स्वामी शक्रेन्द्र हैं। चिरकाल से ही इसी प्रकार ये अपने विमानों में आनन्द विलास करते रहते हैं।"

असुरराज चमरेन्द्र का क्रोध और भी भड़क उठा। बोले–"अब यह नहीं चलेगा। मैं आज ही इसके विमानों को नष्ट कर डालूँगा।"

सामानिकों द्वारा समझाने पर भी असुरराज क्रोध एवं अहंकार में विवेकशून्य बने रहे और सुधर्म देव विमान पर आक्रमण करने को शस्त्र उठा लिया। परन्तु तभी उसे अपनी अल्प शक्ति और अल्प ऋद्धि का भान हुआ। दुर्बल व्यक्ति शक्तिशाली शत्रु से टकराने से पहले उससे भी प्रचण्ड शक्तिशाली का आश्रय खोजता है ताकि संकट के समय में रक्षा हो सके। असुरराज ने भी ध्यान देकर देखा, तभी उसे सुंसुमारपुर के बाहर अशोक वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ खड़े महातपस्वी श्रमण वर्द्धमान दिखाई दिये। वह शीघ्र ही नीचे आया, प्रभु की वन्दना की, प्रार्थना करके कहा–"भन्ते ! मैं असुरराज चमरेन्द्र आपकी शरण लेकर सुधर्मेन्द्र शक्र से युद्ध करने जा रहा हूँ। आप मेरी रक्षा करें।" और प्रचण्ड वेग के साथ असुरराज ने सुधर्म सभा में जाकर हुँकार की–"अरे ! कहाँ है वह सुधर्म देवराज शक्र ! मैं अभी उसको नष्ट भ्रष्ट कर डालता हूँ।" **(चित्र M-23/1)**

कौन है यह प्रचण्ड बली ? किसने दुस्साहस किया है आज ! देवराज ने तत्काल अपना अमोघ वज्र उठाया और पूरी शक्ति के साथ चमरेन्द्र पर फेंका। वज्र हाथ से छूटते ही उससे एक साथ हजारों किरणें छूटने लगीं। तीव्र वेग से वज्र को अपनी ओर बढ़ता देखकर चमरेन्द्र घबराया, जान हथेली में लेकर दौड़ा। जहाँ भगवान महावीर ध्यानस्थ थे, उसी दिशा में तीव्र गति से बढ़ा। पीछे-पीछे वज्र हजारों अग्नि ज्वालाएँ फेंकता हुआ दौड़ रहा था।

शक्रेन्द्र ने देखा–"अरे ! यह तो महाश्रमण महावीर की शरण लेकर यहाँ आया है, और अब उसी ओर भागता जा रहा है। कहीं ऐसा न हो कि मेरे वज्र से प्रभु को पीड़ा पहुँचे। कुछ भी अनिष्ट हो जाये ?" शक्रेन्द्र तुरन्त अपने आसन से उठे और प्रचण्ड वेग के साथ वज्र के पीछे-पीछे दौड़े। आकाश-मण्डल में एक विचित्र दृश्य उपस्थित हो गया। आगे-आगे असुरराज, जोर से पुकारते हुए–"प्रभु ! आपकी शरण है। प्रभु आपकी शरण है।" पीछे-पीछे वज्र अग्नि ज्वालाएँ छोड़ता हुआ, और उसके पीछे देवराज शक्र वज्र को पकड़ने का प्रयास करते हुए। असुरराज छोटा-सा रूप बनाकर भगवान महावीर के पीछे छुप गया और तभी शक्र ने प्रचण्ड वेग के साथ वज्र को पकड़ लिया। वज्र और प्रभु महावीर के बीच सिर्फ चार अंगुल का ही अन्तर रह गया था। शक्र ने असुरराज को सम्बोधित करके कहा–"असुरेन्द्र ! तुमने जो अपराध किया है, वह अक्षम्य है, किन्तु श्रमण भगवान महावीर की शरण ग्रहण करके तुमने मेरे हाथों को बाँध दिया। जाओ, तुम महाश्रमण महावीर के शरणागत हो, इसलिए मैं अभयदान देता हूँ।"

असुरराज भयमुक्त हो गये। देवराज शक्र का हृदय भी द्वेषमुक्त हो गया। दोनों ही प्रभु की वन्दना करके अपने-अपने स्थान पर चले गये। **(चित्र M-23/2)**

चन्दना का उद्धार

वत्स देश की राजधानी कौशाम्बी में महाराज शतानीक का राज्य था। शतानीक की पटरानी मृगावती वैशाली गणराज्य के अध्यक्ष महाराज चेटक की पुत्री थी। वत्स देश का पड़ौसी राज्य था अंग, और अंग देश

Scanned by CamScanner

की राजधानी थी चम्पा नगरी। यहाँ के शासक थे महाराज दधिवाहन। दधिवाहन की पटरानी धारिणी भी महाराज चेटक की छोटी पुत्री थी। धारिणी की पुत्री थी वसुमती। रूप-गुण-शील का जीवंत रूप थी वह। कौशाम्बीपति शतानीक ने राज्य विस्तार के लोभ में फँसकर चम्पा पर आक्रमण कर दिया। कौशाम्बी की सेना ने चम्पा में घुसकर लूट-पाट की। एक रथ सैनिक ने राजमहलों से रानी धारिणी और राजकुमारी वसुमती को उठा लिया। वह धन से भी अधिक काम-पिपासु था। रानी धारिणी ने अपनी शील-रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग कर दिया। तब रथिक ने सोचा–"कहीं यह कन्या भी माँ के रास्ते न चले", अतः उसने उसको आश्वासन दिया, और अपनी बेटी मानकर रखा। रथिक की पत्नी धन की लोभी थी। उसके बार-बार कहने पर रथिक ने वसुमती को कौशाम्बी के दासी बाजार में एक लाख स्वर्ण-मुद्रा में नीलाम करने की बोली लगाई। नगर की एक गणिका ने रूपवती वसुमती को तत्काल एक लाख स्वर्ण-मुद्रा देकर खरीद लिया, किन्तु राजकुमारी बनी दासी वसुमती ने गणिका के साथ जाने से मना कर दिया। गणिका झगड़ा करने लगी।

उसी समय कौशाम्बी के एक कोटिपति धनावह सेठ दुकान से घर जाते हुए उधर आ निकले। बाजार में अजीब भीड़ और यह शोर-शराबा देखकर पूछा–"क्या बात है आज?"

लोगों ने बताया–"सेठ जी ! आज चम्पा नगरी की लूटी हुई एक दासी बाजार में एक लाख स्वर्ण-मुद्रा में बिकने आई है। दासी क्या, यह तो कोई देव-कन्या है, या साक्षात् अप्सरा ! गणिका ने इसे खरीदा है, परन्तु यह उसके साथ जाने से मना कर रही है.... कोई उच्च कुलीन कन्या लगती है.... शीलवती रूपवती.....!"

तत्क्षण सेठ दास-हाट के बीच आकर खड़े हो गये। एक नजर में उसने राजकुमारी को देखा। उसकी आँखों में पानी भर आया। "यह कोई दासी है.... नहीं ! नहीं ! यह तो साक्षात् देव-कन्या है। ऐसी सुकुमार शीलवती कन्याओं पर इतना घोर अत्याचार ! गृहलक्ष्मी नारियों की आज यह दुर्दशा !" सेठ का हृदय द्रवित हो उठा। वह निकट आया और वसुमती की ओर मुँह करके बोला–"बेटी ! मेरा नाम धनावह सेठ है ! मैं इस नगर का निर्ग्रन्थ श्रमणोपासक हूँ। तेरी यह दशा देखकर मेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया है। यदि तू गणिका के साथ नहीं जाना चाहती है, तो तेरे साथ जबर्दस्ती नहीं होने दूँगा। मैं एक लाख स्वर्ण-मुद्रा देकर तुझे खरीदूँगा। चलोगी मेरे साथ....? मेरी बेटी बनकर रहोगी ?"

एक अनाथ राजकुमारी दासी के रूप में बिककर सेठ धनावह के घर आ गई। सेठानी मूला ने इस अनुपम सुन्दरी कन्या को आते देखा तो अनेक कुशंकाओं से उसका माथा ठनक गया। पहले ही क्षण कन्या के रूप में उसे सौत के दर्शन होने लगे।

वसुमती ने कुछ ही दिनों में अपने मधुर व्यवहार के कारण समूचे घर पर जादू-सा कर दिया। सेठ धनावह उसके स्वभाव की शीतलता को देखकर उसे "चन्दना" कहकर पुकारने लगे।

सेठानी मूला बड़ी शंकालु और ईर्ष्यालु थी। वह चन्दना से मन ही मन जलती थी। एक दिन सेठ धनावह किसी काम से नगर के बाहर गये। मूला के लिए यह सुनहरा अवसर था। उसने घर के सभी दास-दासियों की छुट्टी कर दी। फिर चन्दना को बुलाया, उसके सुन्दर वस्त्र, गहने, कपड़े उतरवा दिये एक फटा-पुराना वस्त्र पहनने को दिया। बेड़ियों से हाथ-पैर बाँध दिये, उस्तरे से उसके काले-काले केश उतार दिए। चन्दना पूछती रही–"माताजी ! यह क्या कर रही हो? क्यों कर रही हो? मैंने तो आपका कुछ भी नहीं बिगाड़ा। मुझे किस अपराध की सजा दे रही हो?"

Scanned by CamScanner

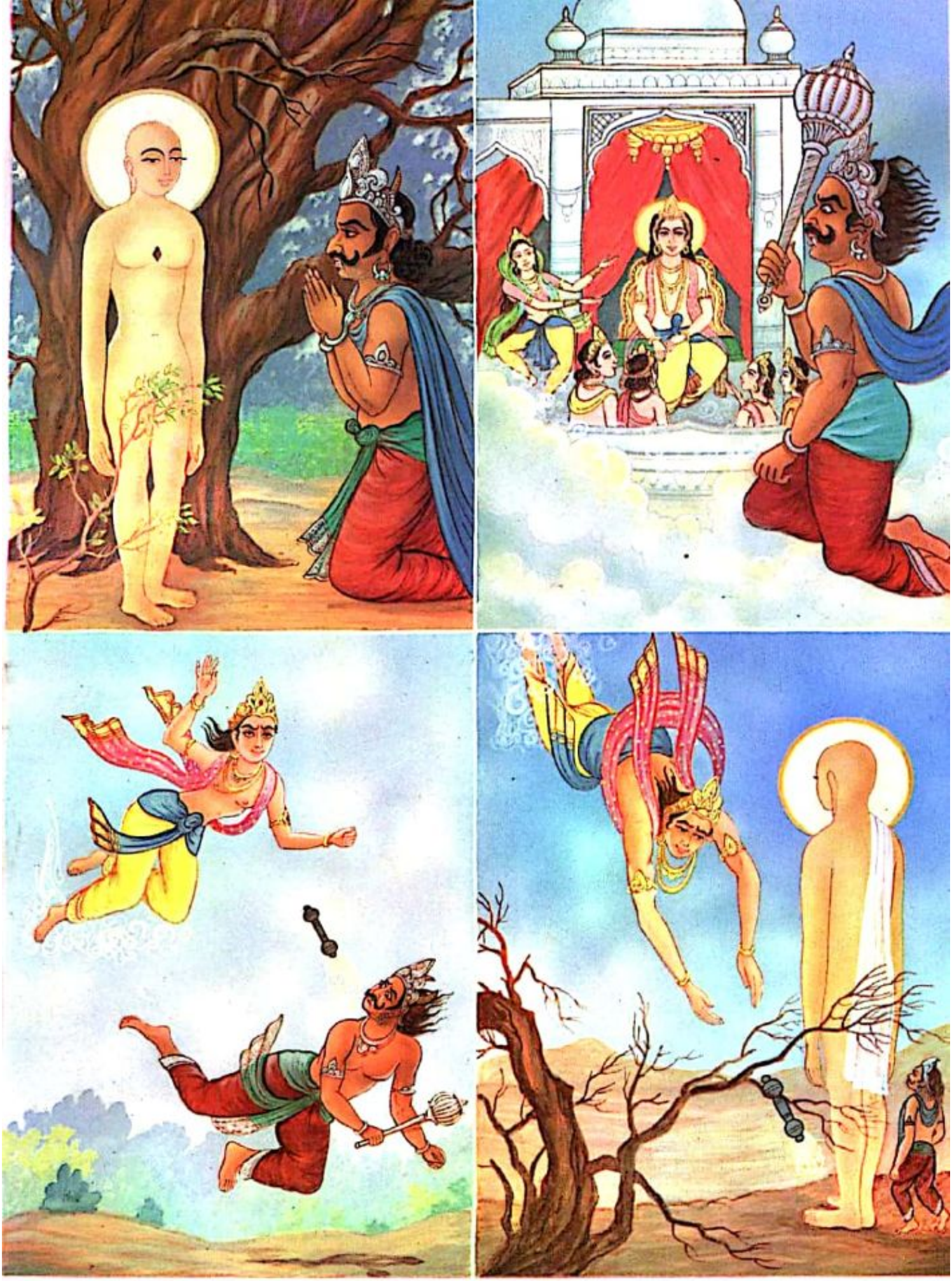

M 23 (१) चमरेन्द्र द्वारा भगवान महावीर की शरण लेकर शक्रेन्द्र को चुनौती (२) अन्त में महावीर की चरण-शरण
The story of Chamarendra challanging Shakrendra and later taking refuge near Mahavir to save himse

Scanned by CamScanner

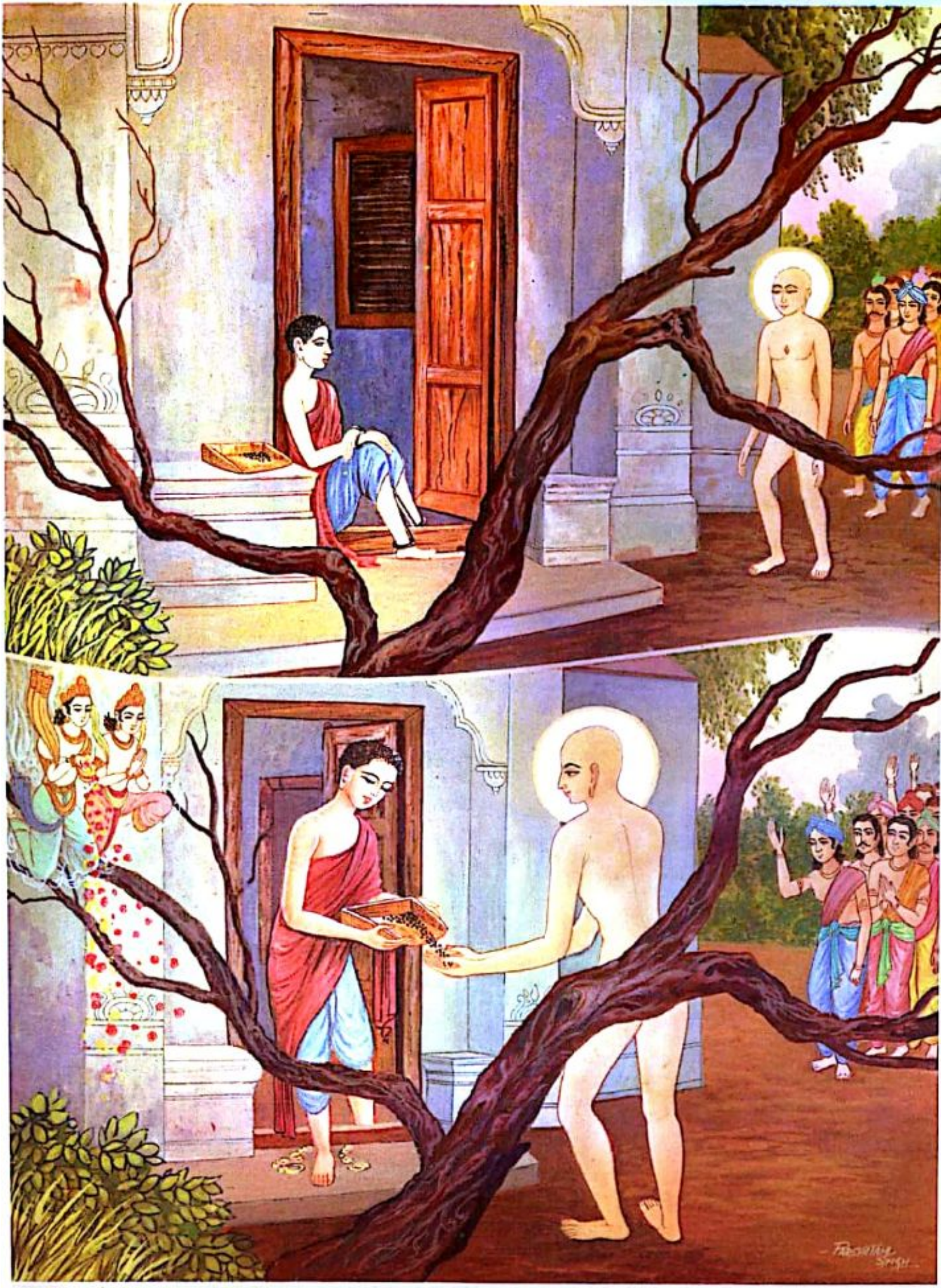

M 24 महावीर का कठोर अभिग्रह और चन्दना द्वारा महावीर का पारणा।

The impossible resolution of Mahavir; and Chandana giving alms to Mahavir for breaking his fast

Scanned by CamScanner

मूला ने चन्दना को डाँटकर चुप कर दिया। एक भौंहरे में बन्द कर ताला लगाया और चाबी साथ लेकर अन्यत्र चली गई।

तीसरे दिन सेठ धनावह वापस आये। घर को सूना-सूना देखा तो हृदय धड़क उठा। बाहर से ही पुकारा–"बेटी चन्दन ! बेटी चन्दन !" परन्तु चन्दन का उत्तर नहीं मिला। सेठ ने भवन के दूसरी तरफ से पुकार लगाई। बार-बार जोर से पुकारा, चन्दना ने भीतर से ही उत्तर दिया–"पिताजी ! मैं यहाँ पीछे के भौंहरे में हूँ।"

सेठ ने भौंहरे के दरवाजे बन्द देखे, ऊपर ताला लगा हुआ। बाहर से ही चन्दना की दुर्दशा देखी तो वह फूट-फूटकर रो पड़ा–"बेटी ! यह क्या हुआ? किस दुष्ट पापात्मा ने तेरी दुर्दशा की है?" चन्दना ने धीरज के साथ कहा–"पिताजी, पहले-मुझे बाहर निकालो, फिर सब-कुछ बताऊँगी।"

सेठ ने किसी प्रकार दरवाजे खोले, चन्दना को बाहर निकाला। उसने कहा–"पिताजी ! मैं तीन दिन से भूखी-प्यासी हूँ । कुछ खाने-पानी को दे दीजिए।" सेठ ने देखा, घर का सब सामान भीतर बन्द है, सिर्फ गायों के खाने के लिए उड़द के बाकले बाहर रखे हैं। बर्तन भी कोई नहीं, सेठ ने एक कोने में रखा सूप उठाया, उसमें उड़द के बासी बाकले रखे, और चन्दना के सामने रख दिये–"बेटी ! तू कुछ खा, तब तक मैं लुहार को बुलाकर तेरी बेड़ियाँ तुड़वाता हूँ।"

कठोर अभिग्रह

भगवान महावीर के साधनाकाल का यह बारहवाँ वर्ष था। वैशाली में चातुर्मास सम्पन्न करके विहार करते हुए प्रभु कौशाम्बी के उद्यान में पधारे। शतानीक का चम्पा पर आक्रमण ! चम्पा का पतन ! धारिणी रानी का शील-रक्षा के लिए बलिदान और फिर राजकुमारी वसुमती का कौशाम्बी के बाजार में दासी के रूप में विक्रय! यह सारा घटनाक्रम कौशाम्बी के आस-पास ही घूम रहा था। प्रभु महावीर के ज्ञान-दर्पण में यह सब-कुछ प्रतिबिम्बित-सा हो रहा है। प्रभु ने पौष कृष्णा प्रतिपदा के दिन एक विकट अभिग्रह धारण किया–

"मैं एक दासी बनी राजकुमारी के हाथ से भिक्षा ग्रहण करूँगा। उस राजकुमारी का सिर मुँड़ा हो, हाथ-पैरों में बेड़ियाँ डली हों, आँखों में आँसू हों, तीन दिन की भूखी-प्यासी हो, घर की देहलीज के बीच बैठी हो, सूप के कोने में उड़द के बाकले खाने के लिए रखे हों, जब तक इस प्रकार की भिक्षा नहीं मिलेगी, तब तक सर्वदा तपस्या करता रहूँगा····।"

कौशाम्बी के गृहस्थों के घर भिक्षा हेतु पर्यटन करते हुए भगवान महावीर को लगभग चार महीने बीत गये।

एक दिन कौशाम्बी के महामंत्री सुगुप्त के भवन पर प्रभु भिक्षार्थ पधारे। सुगुप्त की पत्नी नन्दा प्रभु पार्श्वनाथ की उपासिका थी, श्रमणों के संयमी जीवन से परिचित। महाश्रमण वर्द्धमान को भिक्षार्थ पधारे देखकर वह आनन्द विभोर हो गई। शुद्ध प्रासुक भिक्षा के लिए प्रभु को आमंत्रित किया। परन्तु प्रभु महावीर उसके द्वार पर पधारकर वापस लौट गये। नन्दा का हृदय दुःखी हो गया। वह अपने भाग्य को कोसती हुई फूट-फूटकर रोने लगी–"आज मेरे घर पर महाश्रमण वर्द्धमान पधारे और मैं भाग्यहीन, उनको कुछ भी भिक्षा नहीं दे सकी···· " तभी नन्दा की दासियों ने कहा–"स्वामिनी ! आप इतनी दुःखी क्यों होती हैं? यह तपस्वी तो चार महीने से इसी प्रकार कौशाम्बी के घरों में भिक्षार्थ आता है, और बिना कुछ लिए, बिना बोले वापस चला जाता है, हम तो चार महीने से इसी प्रकार देख रही हैं, फिर आप इतना पश्चात्ताप क्यों करती हैं?"

Scanned by CamScanner

दासी की बात सुनकर तो नन्दा का हृदय और भी दुःखी हो गया। क्या कहा–"तुमने, चार महीने से महाश्रमण भिक्षा लिए बिना ही लौट जाते हैं···· इसका मतलब है चार माह से भूखे-प्यासे प्रभु मेरे द्वार से भी इसी प्रकार लौट गये····! मैं कितनी भाग्यहीन हूँ····!!"

तभी महामंत्री सुगुप्त आ गये। नन्दा ने उलाहना देते हुए यह घटना सुनाई। मंत्री सुगुप्त भी चिन्तित हो गये। महाराज शतानीक और रानी मृगावती को भी इसकी सूचना मिली कि श्रमण वर्द्धमान कौशाम्बी नगरी में चार महीने से भूखे-प्यासे घूम रहे हैं। सभी का मन व्यथित हो उठा, पूरा राज-परिवार भगवान के दर्शनों के लिए गया, और भिक्षा ग्रहण करने की प्रार्थना की।

पाँच महीने पच्चीस दिन बीत गये। छब्बीसवें दिन का सूर्योदय हुआ। मध्यान्ह का समय था। प्रभु वर्द्धमान भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए सेठ धनावह के भवन की तरफ पधार रहे हैं। अनेक लोग प्रभु के पीछे-पीछे चल रहे हैं।

भींहरे की देहलीज के बीच चन्दना बैठी थी, एक पाँव भीतर एक बाहर, पास में सूप है, और सूप में बासी उड़द के बाकले···· जब वह हाथ-पैर में बेड़ियाँ देखती है तो सहसा पुरानी स्मृतियाँ उभर आती हैं, उसकी आँखें भीग जाती हैं। सहसा जन-कोलाहल सुनाई देता है। मुँह ऊपर उठाकर देखती है तो उसके सामने खड़े हैं–तरणतारण श्रमण महावीर ! चन्दना भाव-विभोर हो जाती है। "धन्य हैं प्रभु ! आज इस दयनीय स्थिति में आपने मुझे सँभाला।" उसके चेहरे पर हर्ष की आभा चमकने लगती है। चन्दना का रोम-रोम जैसे नाच उठा। "प्रभु पधारो ! मेरे हाथ से कुछ ग्रहण करो····" भगवान महावीर आगे बढ़कर रुक गये। उनके अभिग्रह की १२ बातें सब मिल रही हैं, परन्तु खुशी के मारे चन्दना की आँखों के आँसू सूख गये थे।

भगवान को वापस मुड़ते देखा तो जैसे चन्दना की खुशियों पर पाला पड़ गया। "हाय भाग्य ! क्या मैं इतनी बदनसीब हूँ कि इस दीन-हीन असहाय स्थिति में मेरे प्रभु द्वार पर आकर खाली लौट गये····।" उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे।

मुड़कर देखा प्रभु महावीर ने, अभिग्रह की सभी बातें पूर्ण हो रही थीं····। भगवान कमल-पत्र के दोने की भाँति दोनों हाथ का दोना बनाकर चन्दना के सामने खड़े हो गये। भाव-विह्वल चन्दना ने सूप में रखे उड़द के बाकले प्रभु के हाथों में बहराये। प्रभु ने आहार ग्रहण कर लिया। (चित्र **M-24**)

दूसरे ही क्षण हर्ष के अतिरेक से चन्दना की बेड़ियाँ टूट-टूटकर बिखर गईं। आकाश में देव-दुन्दुभि बजने लगी। "अहोदानं" के दिव्य घोष से दिशाएँ गूँज उठीं। विकसित पुष्प, वस्त्र और गंधोदक की वृष्टि हुई, मणि रत्नों के ढेर से सेठ धनावह का आँगन भर गया। पहले से भी हजार गुना रूप निखर उठा चन्दना का। देव-देवियों ने वस्त्रों, अलंकारों से चन्दना का शृंगार किया।

भगवान के साधनाकाल का यह अभिग्रह मातृ-जाति को दासता से मुक्त करने के दिव्य-अभियान का एक चरण माना जा सकता है।

अन्तिम महाउपसर्ग : कानों में कीलें

साधनाकाल का बारहवाँ चातुर्मास चम्पा नगरी में बिताकर विहार करते हुए भगवान "छम्माणी गाँव" के बाहर आकर कायोत्सर्ग में खड़े थे। संध्या का समय था। खेतों में काम करके एक ग्वाला घर को लौट रहा

Scanned by CamScanner

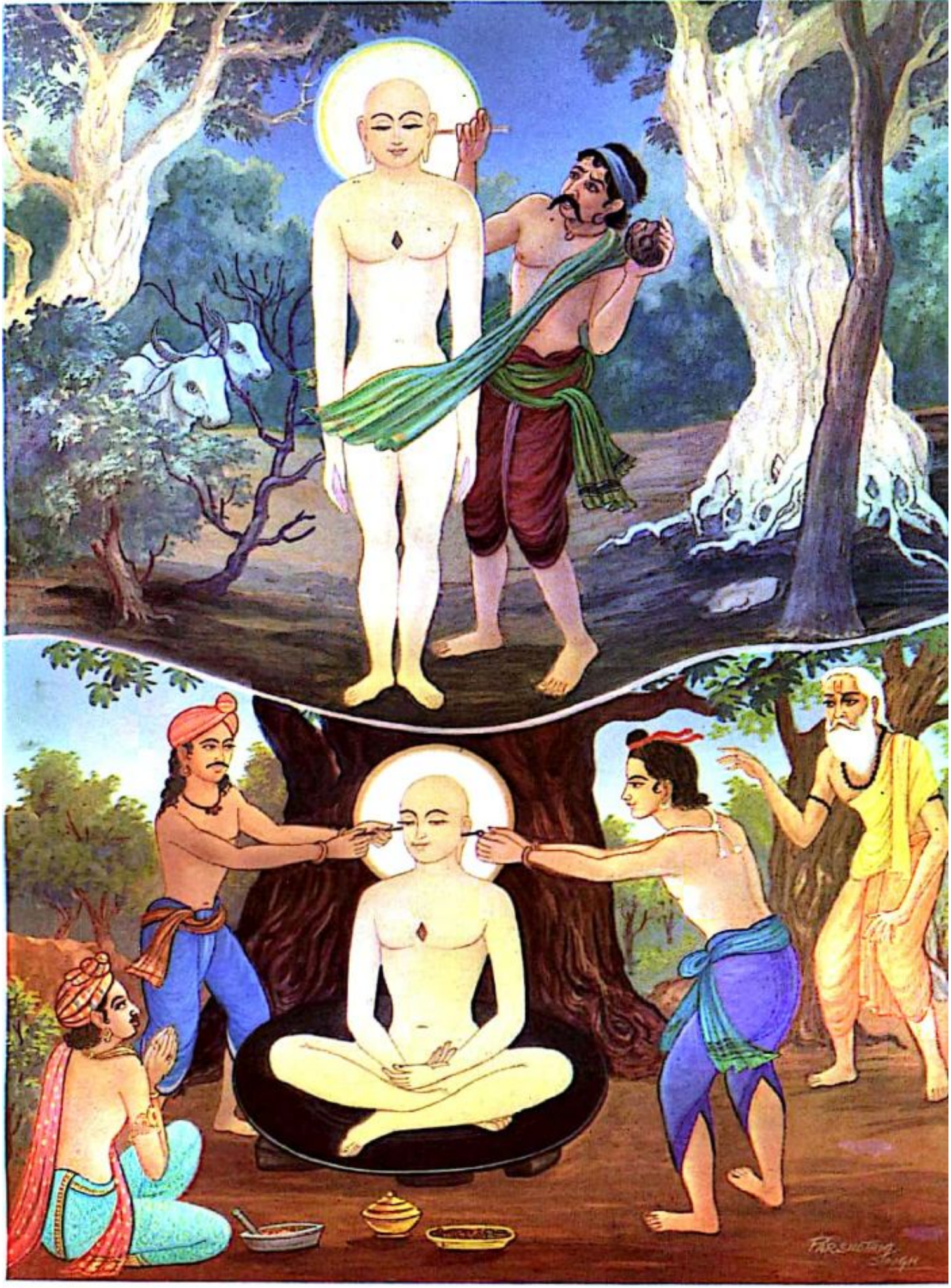

M 25 अंतिम उपसर्ग : कानों में कीलें तथा उनका उपचार।
The last affliction : Nails in the ears and the treatment

Scanned by CamScanner

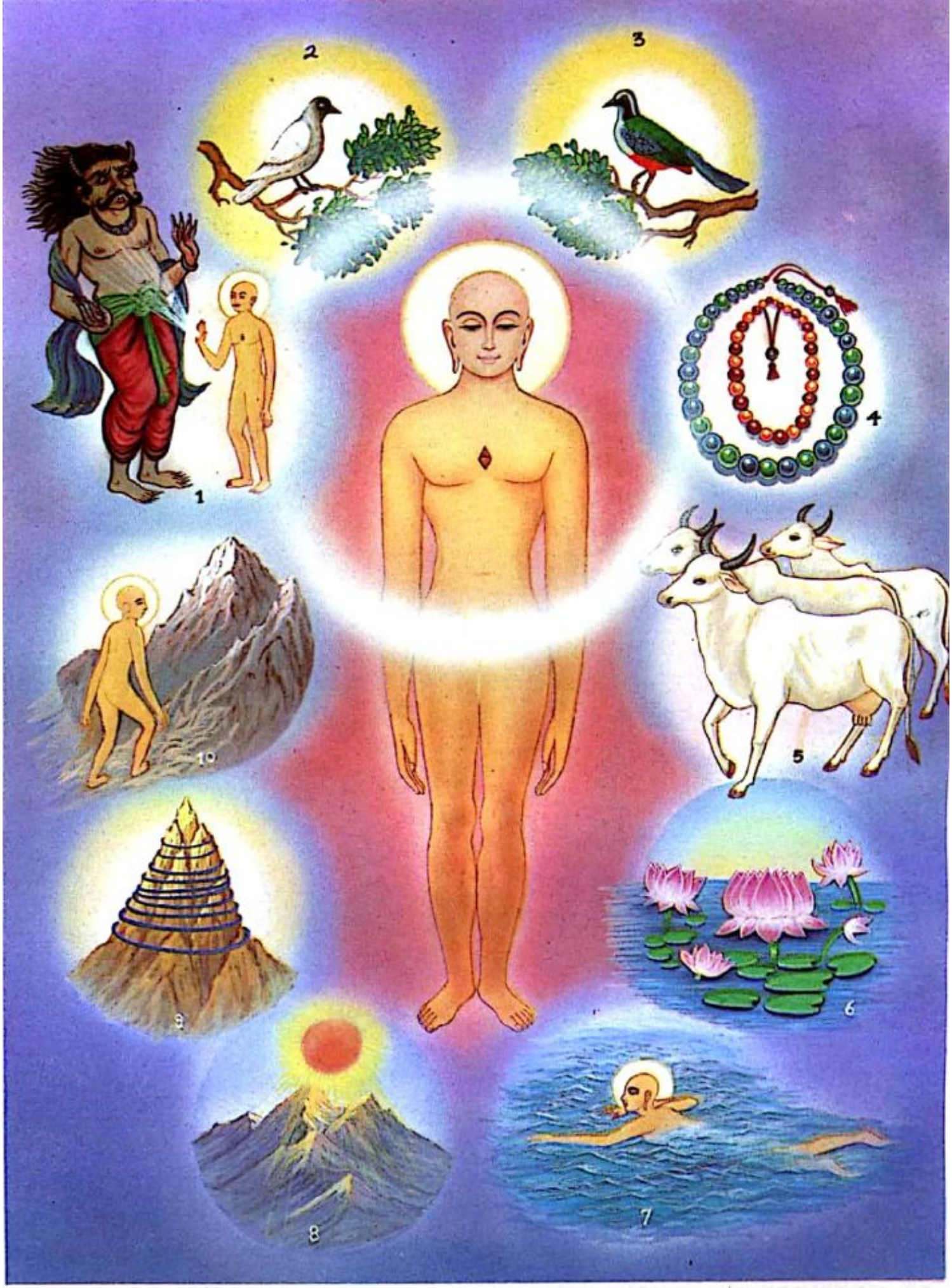

M 26 केवलज्ञान से पूर्व दस महास्वप्न।
Ten great dreams before omniscience

Scanned by CamScanner

था। खेत के पास ही श्रमण महावीर को ध्यानस्थ देखा तो उसने कहा–"बाबा, जरा मेरे बैलों की देखभाल रखना, अभी आता हूँ।"

ग्वाला गाँव चला गया, आने में उसे विलम्ब हो गया। बैल चरते-चरते कहीं दूर निकल गये। ग्वाला लौटकर आया तो बैल नहीं मिले, उसने पूछा–"बाबा ! बताओ, मेरे बैल कहाँ चले गये?"

भगवान ध्यान में लीन थे। ग्वाले ने दुबारा पूछा, फिर भी मौन। उसे क्रोध आ गया, खूब जोर से चिल्लाया–"अरे ढोंगी बाबा, क्या तेरे कान फूट गये हैं? बहरा है? तुझे कुछ सुनाई देता है कि नहीं?"

भगवान ने कोई उत्तर नहीं दिया। ग्वाला आग-बबूला हो उठा–"ढोंगी बाबा लगता है, तेरे दोनों कान ही फूट गये हैं। ठहर जरा, अभी तेरा उपचार करता हूँ।" और उसने काँस नामक घास की नुकीली कीलें लीं, आव देखा न ताव श्रमण महावीर के कानों में आर-पार ठोक दीं। (चित्र **M-25/1**)

इस असह्य मर्मघातक वेदना में भी न तो प्रभु ने ध्यान भंग किया और न ही मूर्ख ग्वाले पर द्वेष-भाव आया।

यथासमय कायोत्सर्ग पूर्ण करके भगवान गाँव में भिक्षा के लिए विचरण करते हुए सिद्धार्थ नामक एक वणिक के घर पहुँच गये। वणिक के पास उस समय उसका मित्र खरक नाम का वैद्य बैठा था। महाश्रमण को आते देखकर दोनों ने ही भावपूर्वक अभिवादन करके शुद्ध भिक्षान्न दिया।

वैद्य खरक ने सिद्धार्थ से कहा–"मित्र ! इस श्रमण की मुख-मुद्रा पर अत्यन्त तेज ओज दमक रहा है, परन्तु कुछ क्लान्ति-सी भी है। मुझे लगता है कि इस तेजस्वी श्रमण को कोई न कोई अन्तःशल्य खटक रहा है।"

सिद्धार्थ ने खरक वैद्य से कहा–"मित्र ! ऐसे सर्व लक्षण सम्पन्न महापुरुष को कोई अन्तर पीड़ा है तो हमें तुरन्त उसका उपचार करना चाहिए।"

भिक्षा लेकर महाश्रमण वापस चले गये। खरक वैद्य अपने विश्वस्त सहायकों को साथ लेकर भगवान के पीछे-पीछे चले। उद्यान में जाकर प्रभु के शरीर का निरीक्षण किया तो उसे कानों में आर-पार चुभी कीलें दिखाई दीं। दोनों ने मिलकर कीलें निकालने के साधन जुटाए। शरीर पर तेल आदि की मालिश की और संडासी (कंक-मुख) से खींचकर कानों की कीलें बाहर निकालीं। कीलें बाहर निकालते समय भगवान को इतनी मर्मान्तक पीड़ा हुई कि रक्त की धारा बहने लगी। तब खरक वैद्य ने संरोहण औषधि का लेप कर दिया। (चित्र **M-25/2**)

दस महास्वप्न

कहा जाता है–असह्य वेदना की शान्ति होने पर भगवान महावीर को रात्रि के अन्तिम प्रहर में नींद की हल्की-सी झपकी आ गई। कुछ क्षणों की नींद में भगवान ने दस विचित्र स्वप्न देखे।

श्रमण महावीर ने जो स्वप्न देखे उत्पल निमित्तज्ञ ने उनका फलितार्थ इस प्रकार बताया–

१. स्वप्न : एक ताल पिशाच को पराजित किया।
   फल : शीघ्र ही भगवान मोहनीय कर्म का क्षय करेंगे।
२. स्वप्न : एक श्वेत पंख वाला पक्षी (पुंस्कोकिल) सेवा कर रहा है।
   फल : शुक्ल ध्यान में लीन रहेंगे।

Scanned by CamScanner

३. स्वप्न : एक विचित्र पंख वाला पक्षी निकट सामने आया है।

फल : विविध रहस्यों वाले द्वादशांग रूप ज्ञान की प्ररूपणा करेंगे।

४. स्वप्न : दो रत्न-मालाएँ सामने रखी हैं।

फल : उत्पल चौथे स्वप्न का अर्थ नहीं समझ पाया। उसके पूछने पर श्रमण महावीर ने ही स्पष्ट किया–"मैं साधु धर्म एवं श्रावक धर्म रूप दो प्रकार के धर्म का उपदेश करूँगा।"

५. स्वप्न : सफेद गायों का समूह सामने स्थित है।

फल : श्रमण-श्रमणी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ प्रभु की सेवा में रहेगा।

६. स्वप्न : खिले हुए कमलों वाला पद्मसरोवर।

फल : चारों निकाय के देवता प्रभु की सेवा करते रहेंगे।

७. स्वप्न : तरंगाकुल महासमुद्र को अपनी भुजाओं से तैरकर पार कर दिया।

फल : संसार-समुद्र को पार करेंगे।

८. स्वप्न : सूर्य अपना प्रचण्ड आलोक चारों ओर बिखेर रहा है।

फल : केवलज्ञान का निर्मल आलोक शीघ्र ही जगमगायेगा।

९. स्वप्न : अपनी नील वैडूर्यवर्णी आँतों से मानुषोत्तर पर्वत को चारों ओर से आवेष्टित कर रहा हूँ।

फल : समस्त को प्रभु अपने निर्मल यश से आपूरित कर देंगे।

१०. स्वप्न : मेरु पर्वत की चूला पर सिंहासन के ऊपर बैठा हूँ।

फल : प्रभु उच्च सिंहासन पर विराजमान होकर धर्म देशना देंगे। (चित्र **M-26**)

Scanned by CamScanner

केवली चर्या

केवलज्ञान का आलोक

वैशाख शुक्ला दशमी का दिन था। साधनाकाल के बारह वर्ष पाँच मास पन्द्रह दिन व्यतीत हो चुके थे। प्रभु महावीर विहार करते हुए ऋजुबालुका नदी के तट पर एक उद्यान में शाल वृक्ष के नीचे ध्यानावस्थित हुए। उकडू आसन में बैठे वैशाख महीने की कड़ी धूप में भी प्रभु ध्यान की असीम शीतलता अनुभव करते हुए तन-मन-प्राणों को अकम्प सुस्थिर बनाकर शुक्ल ध्यान में लीन हो रहे थे। चार घनघाति कर्मों के सघन आवरण छूटे, कि सहसा केवलज्ञान केवलदर्शन का लोकालोक प्रकाशी भास्कर उदित हो गया। भगवान महावीर अब निश्चय दृष्टि से भगवान, जिन, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी बन गये। केवलज्ञान होते ही कुछ क्षणों के लिए, स्वर्ग, नरक और तिर्यक् लोक में शान्त प्रकाश-सा फैल गया। (चित्र **M-27/1**)

प्रथम धर्म देशना

साढ़े बारह वर्ष की कठोर सुदीर्घ साधना के पश्चात् श्रमण भगवान वर्द्धमान को केवलज्ञान, केवलदर्शन की प्राप्ति हुई। असंख्य देव-देवी तथा देवेन्द्र धरती पर आये, प्रभु महावीर की वन्दना करके कैवल्य महोत्सव मनाया।

सामान्यतः केवलज्ञान की उपलब्धि होते ही तीर्थंकर देव समता धर्म (अहिंसा) का प्रथम उपदेश देते हैं। प्रभु की प्रथम दिव्य देशना का लाभ लेने के लिए ऋजुबालुका नदी के पावन तट पर ही देवताओं ने समवसरण की रचना की। अगणित देवता प्रभु का अमृत उपदेश सुनने में मग्न हो गये। (चित्र **M-27/2**)

देवता सत्य, संयम, शील के प्रशंसक और उपासक तो हो सकते हैं, परन्तु नियम ग्रहण करके उसकी आराधना नहीं कर पाते। संयम की पात्रता केवल मनुष्य में ही है। इस दृष्टि से यह माना जाता है कि कोई भी मनुष्य व्रत ग्रहण का संकल्प नहीं कर सका, इस कारण प्रभु महावीर की प्रथम देशना, फल की दृष्टि के निष्फल ही रही।

ऋजुबालुका तट से विहार करके प्रभु महावीर मध्यम पावा पधारे। महसेन वन में दिव्य समवसरण की रचना हुई। (समवसरण का चित्र देखो)

इसी वैशाख महीने में सोम शर्मा ने एक विशाल महायज्ञ का आयोजन किया था। इस महायज्ञ में सम्मिलित होने के लिए भारत के ११ प्रसिद्ध प्रकाण्ड विद्वान् अपने ४४०० शिष्यों के साथ उपस्थित हुए। हजारों नर-नारी दूर-दूर से यज्ञ की पवित्र ज्योति के दर्शन करने के लिए आ रहे थे। इस प्रकार मध्यम पावा एक धार्मिक तीर्थ बन गया था।

मध्यम पावा में अचानक ही भगवान महावीर के आगमन की चर्चा सुनी तो पंडित सोम शर्मा चिंतित हो उठा। वह यज्ञ के प्रमुख सूत्रधार महापंडित इन्द्रभूति आदि के पास आया। सभी ने मंत्रणा की कि श्रमण वर्द्धमान महावीर यहाँ यज्ञ विरोधी उपदेश करेंगे तो हमें क्या करना चाहिए? इन्द्रभूति ने कहा–"श्रमण वर्द्धमान अवश्य ही कोई अद्‌भुत पुरुष हैं। उनके पास साधना का बल है, तप का तेज है, परन्तु फिर भी ज्ञान में वे हमारा मुकाबला नहीं कर सकेंगे। हम अपने प्रखर ज्ञान बल से आज उन्हें परास्त कर देंगे। हमें चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। संभव है आज का यह पवित्र दिन हमारी दिग्विजय का दिन बन जाये।"

Scanned by CamScanner

महापंडित इन्द्रभूति के आशा भरे आश्वासनों से अन्य सभी पंडितों के मुर्झाये हुए मुख खिल उठे। तभी महापंडित इन्द्रभूति अपने ५०० शिष्य छात्रों को साथ लेकर प्रभु महावीर के समवसरण की ओर बढ़े।

इन्द्रभूति को आत्मानुभूति

समवसरण के प्रथम सोपान पर चरण रखते ही महापंडित इन्द्रभूति के अन्तःकरण में एक बिजली-सी चमक गई। मन में उथल-पुथल मच गई। दूर से ही उन्होंने श्रमण महावीर के अद्‌भुत तेजोदीप्त मुख-मंडल को देखा तो जैसे सूर्य की तेज किरणों से हिमालय की बर्फ पिघलने लगती है इन्द्रभूति का अहंकार पिघलने लगा। मन में संशय और विचिकित्सा के निर्झर फूटकर बहते हुए-से अनुभव हुए।

"इन्द्रभूति गौतम ! तुम आ गये ····?" समवसरण के तृतीय द्वारं में प्रवेश करते ही प्रभु महावीर का मेघ गंभीर सम्बोधन इन्द्रभूति के कानों में पड़ा। इन्द्रभूति को आश्चर्य हुआ–"महावीर मुझे पहचानते हैं !" फिर गर्व में हाथ उठाकर सोचने लग-"मेरी विश्व विश्रुत विद्वत्ता के कारण परिचित तो होंगे ही।" (चित्र **M-28/1**)

"इन्द्रभूति गौतम ! तुम वेदों के महापंडित होकर भी आत्मा की सत्ता के विषय में शंकाशील हो?" प्रभु महावीर की वाणी सुनकर इन्द्रभूति विस्मय से अभिभूत हो गये।

प्रभु ने मधुर और मैत्रीपूर्ण शब्दों में पुकारा–"इन्द्रभूति गौतम ! जिन वेदों के आधार पर तुम आत्मा के विषय में शंका करते हो, उन्हीं वेदों में आत्मा की स्वतंत्र सत्ता के स्पष्ट प्रमाण विद्यमान हैं। क्या कभी तुमने सोचा है, आत्मा क्या है? कौन है? और आत्मा के विषय में शंका करने वाला कौन है? ज्ञान और ज्ञान का संवेदन–दो अलग वस्तु नहीं हैं। आत्मा स्वयं ज्ञानमय है (विज्ञानघन है) और "ज्ञान" यही आत्मा की पहचान है। आत्मा अमूर्त्त, अतीन्द्रिय तत्त्व है, इसे इन्द्रियों से नहीं, इन्द्रियातीत अनुभूति से ही पहचान सकते हो, अनुभव कर सकते हो। तुम स्वयं की सत्ता का अनुभव करो।"

प्रभु महावीर के मुख से वेदों के वाक्य और आत्मा के अस्तित्व में उनके प्रबल अकाट्य तर्क सुनकर इन्द्रभूति की शंका का उच्छेद हो गया। अहंकार पिघला। विनम्रता आते ही सत्य की दिव्य किरण का दर्शन होने लगा। इन्द्रभूति गौतम के मन का अंधकार मिट गया।

"प्रभु ! मैं विजीगिषु (विजय का इच्छुक) बनकर आया था, परन्तु अब केवल जिज्ञासु हूँ। मुझे अनन्त सत्य का ज्ञान दीजिए। मैं इन दिव्य चरणों का शिष्यत्व ग्रहण करना चाहता हूँ ·····!" इन्द्रभूति महावीर के चरणों में झुक गये। (चित्र **M-28/2**)

"अहासुहं देवाणुप्पिया"–महावीर का अनाग्रही स्वर मुखरित हुआ। इन्द्रभूति गौतम भगवान महावीर के प्रथम शिष्य और प्रथम गणधर बने। उनके साथ आये पाँच सौ छात्र शिष्य भी प्रभु के चरणों में प्रव्रजित हो गये। अवनि-अम्बर जयघोषों से गूँज उठा।

इन्द्रभूति की दीक्षा के समाचार सुनते ही यज्ञशाला की विद्वद् मंडली हतप्रभ-सी रह गई। फिर भी दूसरे महांडित अग्निभूति ने साहस करके कहा–"मैं जाता हूँ उस मायावी महावीर के पास अपने बन्धु को छुड़ाऊँगा और महावीर को भी जीतकर आऊँगा ····· " अग्निभूति भी अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ भगवान

Scanned by CamScanner

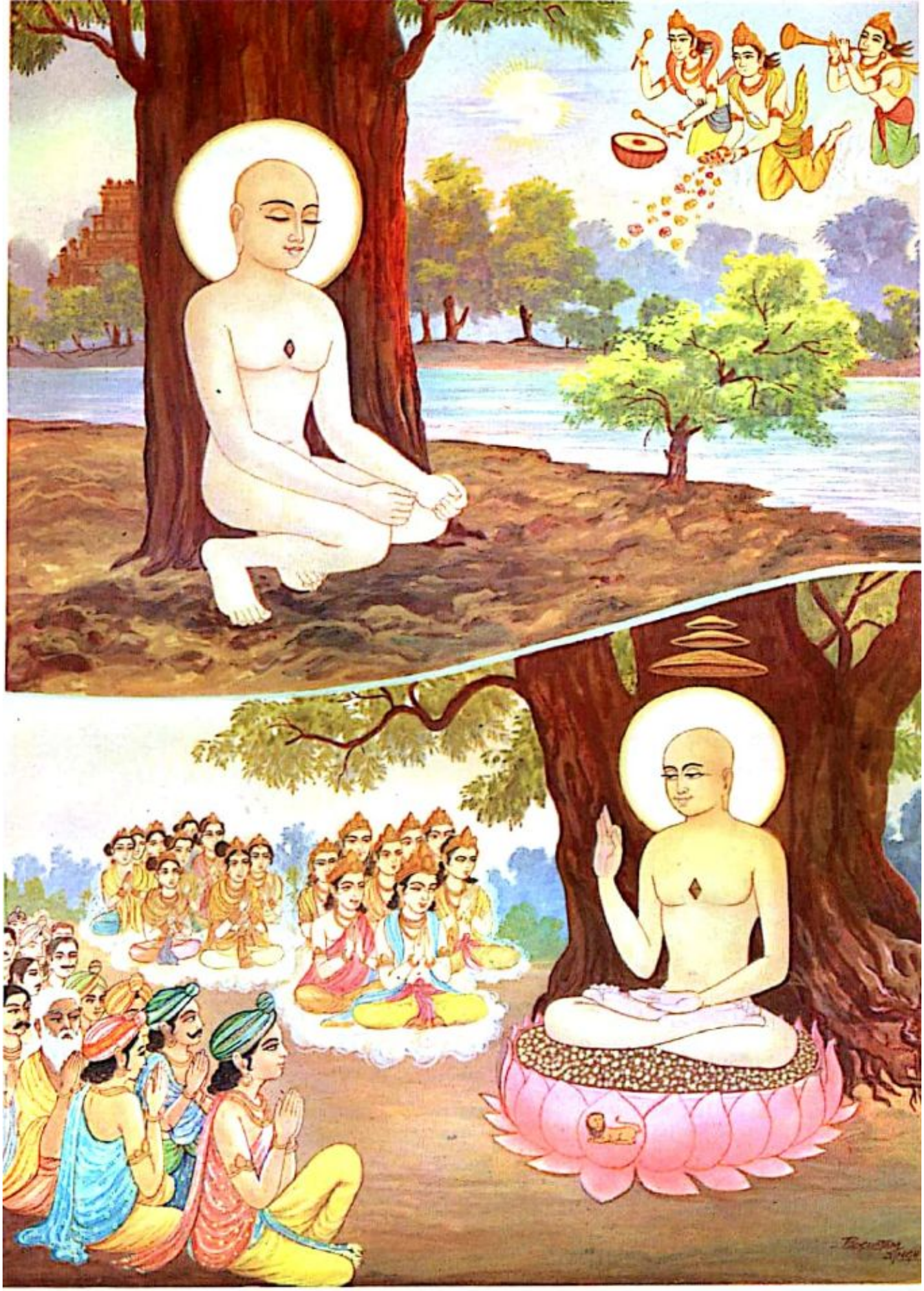

M 27 (१) ऋजुवालुका नदी के तट पर भगवान महावीर को कैवल्य प्राप्ति
(२) भगवान महावीर की देवों की उपस्थिति में प्रथम देशना।
(1) Bhagavan Mahavir attains omniscience on the banks of the river Rijubaluka
(2) The first discourse in presence of gods

Scanned by CamScanner

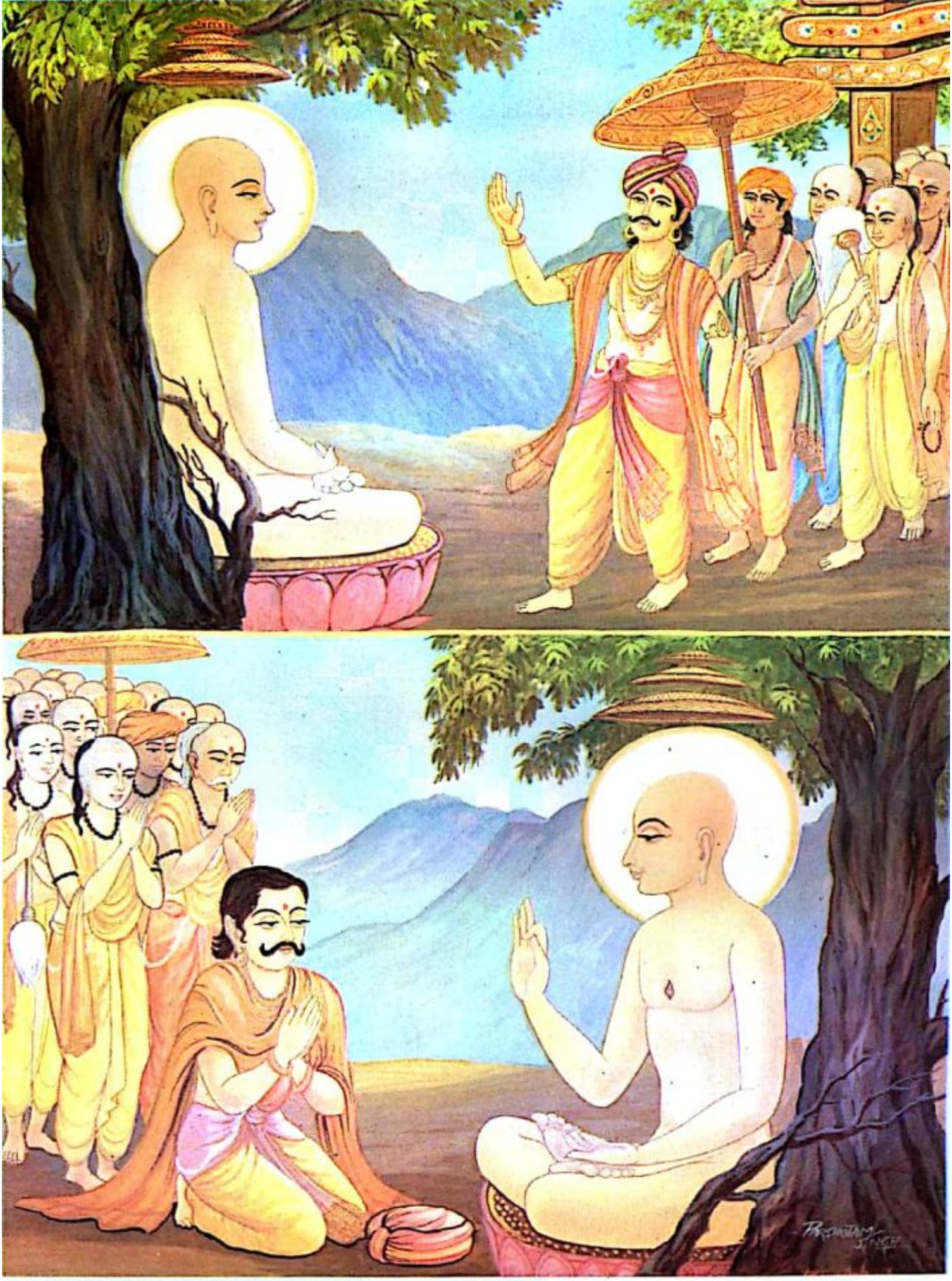

M 28 इन्द्रभूति का आगमन और महावीर के चरणों में सर्वात्मना समर्पण।
Indrabhuti's arrival and total submission before Mahavir.

Scanned by CamScanner

महावीर के समवसरण में पहुँचे। जैसे ही भगवान के समक्ष उपस्थित हुए प्रभु ने उनको नाम से सम्बोधित किया–"अग्निभूति ! तुम्हारा ज्येष्ठ बंधु अपने संशय जाल से मुक्त होकर संशयातीत बन गया है। अब तुम भी अपने कर्म-फल विषयक संशय को मिटाओ, जिस प्रकार जीव का अस्तित्व सिद्ध है उसी प्रकार जीव कर्म का कर्त्ता और फल भोक्ता भी स्वयं ही है।"

मन के गुप्त संशय का उद्‌घाटन होते ही जैसे अग्निभूति के अन्तर कपाट खुल गये। ज्ञान का दर्प चूर-चूर होते ही, श्रद्धा का निर्झर फूट पड़ा। अग्निभूति भी श्रमण महावीर की सर्वज्ञता के समक्ष नतमस्तक हो गये और अपने ५०० शिष्यों के साथ श्रमण महावीर के शिष्य बन गये।

वायुभूति भी ५०० शिष्यों के साथ प्रभु महावीर के शिष्य बन गये।

महापंडित व्यक्त और आर्य सुधर्मा भी आये और वे भी संशयमुक्त होकर अपने-अपने ५००-५०० छात्र शिष्यों के साथ भगवान के पास दीक्षित हो गये। इसी प्रकार मौर्यपुत्र और अकम्पित अपने ३५०-३५० शिष्यों के साथ तथा अचलभ्राता-३००, मेतार्य-३००, प्रभास-३०० शिष्यों के साथ भगवान महावीर के चरणों में दीक्षित हो गये।

इस प्रकार प्रथम धर्म देशना में ही भारत के ग्यारह महापंडित अपने ४४०० शिष्यों के साथ भगवान महावीर के शिष्य बन गये।

धर्मतीर्थ की स्थापना

वैशाख शुक्ला एकादशी का यह पवित्र दिवस जैन परम्परा का ऐतिहासिक गरिमा का दिवस माना जाता है। वैशाख शुक्ला दशमी को भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हुआ, इसलिए वह 'कैवल्य-कल्याणक' की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। किन्तु धर्मतीर्थ की स्थापना की दृष्टि से एकादशी का दिन अत्यन्त ही महत्त्व का है। इस प्रथम समवसरण में ही जहाँ भारत के ग्यारह दिग्गज ब्राह्मण विद्वान् अपनी मिथ्या धारणाओं का त्यागकर समता और अहिंसा आधारित श्रमण परम्परा में प्रव्रजित हुए, प्रभु के गणधर बने[1], वहाँ हजारों-हजार अन्य स्त्री-पुरुष भी प्रभु की देशना सुनकर प्रतिबुद्ध हुए अनेकों ने संयम ग्रहण किया और अनेकों ने श्रावक धर्म स्वीकार किया।

राजकुमारी चन्दनबाला, जिसके हाथों से भगवान महावीर का कठोर अभिग्रह पूर्ण हुआ था, वह भी इसी पवित्र दिवस की प्रतीक्षा में बैठी थी, जैसे ही उसे सूचना मिली कि भगवान को केवलज्ञान हो गया है, उसका हृदय हिलोरें लेने लगा। वह अति शीघ्रगामी साधनों से अनेक प्रबुद्ध नारियों के साथ भगवान के समवसरण में पहुँची और धर्म उपदेश श्रवणकर भगवान की प्रथम शिष्या बनी।

शंख, शतक आदि अनेक सम्पन्न और प्रमुख सद्‌गृहस्थ तथा सुलसा आदि अनेक प्रमुख नारियों ने श्रावक धर्म ग्रहण किया। इस प्रकार मध्यम पावा नगरी के महासेन वन की यह पवित्र भूमि और वैशाख शुक्ला एकादशी का यह शुभ दिन धन्य हो गया।

---

१. जैन परम्परा में तीर्थंकर के बाद गणधर का पद सर्वोत्कृष्ट पद माना गया है। लोकोत्तर ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि गुणों के "गण" (समूह) को धारण करने के कारण, तथा तीर्थंकर देव के प्रथम प्रवचन को सर्वप्रथम ग्रहण कर उसे सूत्र रूप में गूँथने वाले विशिष्ट ज्ञानी गणधर लब्धियुक्त महापुरुष को "गणधर" कहा जाता है। "गणधर" तीर्थंकरों के प्रधान शिष्य और गण के नायक होते हैं।

Scanned by CamScanner

तीर्थंकर काल की उपलब्धियाँ

भगवान महावीर का साढ़े बारह वर्षीय साधनाकाल उनके अपने जीवन के लिए वीतराग अरिहंत पद की उपलब्धि का आधार बना, वहाँ केवलज्ञान प्राप्त कर तीर्थंकर बनने के बाद का ३० वर्ष का समय विश्व-कल्याण के लिए समर्पित रहा। इस समय में भगवान महावीर ने युगों से चली आती अनेक रूढ़ धारणाओं को तोड़ा और मानवता के लिए अभिशाप रूप अनेक परम्पराओं में परिवर्तन भी किया। उनके तीर्थंकर काल की लोक-कल्याणकारी महानतम उपलब्धियों को मुख्य रूप में हम इस रूप में देख सकते हैं–

१. धर्म एवं परलोक कल्याण के नाम पर होने वाले यज्ञों में पशु हिंसा, मानव बलि तथा अज्ञानमूलक क्रियाकांडों का विरोध कर उनको अहिंसा धर्म की ओर अभिमुख किया।

२. स्त्री, शूद्र आदि का शास्त्र पढ़ने व धर्म करने के अधिकारों से वंचित थे, उन्हें धर्म दीक्षा दी। सबको शास्त्र पढ़ने एवं धर्म साधना करने का समान अधिकार दिया और अध्यात्म एवं समाज के धरातल पर जातिवादी मूल्यांकन की भावना को निर्मूल किया।

३. जाति, धन, सत्ता एवं बाह्य वैभव के आधार पर बँटे मानवीय मूल्यों को, सत्कर्म की श्रेष्ठता के आधार पर स्थापित किया।

४. गिने-चुने विद्वानों की मान्य संस्कृत भाषा के स्थान पर लोक भाषा और लोक संस्कृति को महत्त्व देकर लोक भाषा में, रुचिकर लोक शैली में प्रवचन करके सभी शास्त्रों को लोक भाषा अर्द्ध-मागधी में निरूपित किया।

५. भगवान महावीर ने सम्पूर्ण त्याग मार्ग पर बढ़ने वाले श्रमण-श्रमणी वर्ग के लिए संयम-जप-तप-ध्यान मार्ग के साथ ही लोक-कल्याण के लिए सतत प्रयत्न करते रहने का भी विधान किया। उनके श्रमण वर्ग में इन्द्रभूति गौतम आदि ब्राह्मण वर्ग से, शालिभद्र, धन्ना मुनि जैसे तपस्वी उच्च श्रेष्ठी वैश्य कुल से, मेघकुमार, नन्दिषेण आदि राजकुमार क्षत्रिय कुल से, तो मैतार्य, अर्जुनमाली, हरिकेशबल आदि शूद्र-चांडाल कुल से आकर दीक्षित हुए। इसी प्रकार चन्दनबाला आदि राजकुमारियाँ, मृगावती, काली आदि रानियाँ, सुभद्रा, रेवती आदि श्रेष्ठी कुलोत्पन्न नारियाँ भी दीक्षित हुईं।

६. उनके श्रावक वर्ग में उदायी, श्रेणिक, अजातशत्रु आदि क्षत्रिय राजा थे, आनन्द जैसे बड़े कृषि कार्य करने वाले (पटेल) सद्दालपुत्र जैसे कुंभकार और सुलस जैसे (कौलशौकरिक कसाई पुत्र) भी सम्मिलित थे।

७. भगवान महावीर का धर्म संघ पूर्णतः त्याग, समता, ज्ञान और संयम की श्रेष्ठता के आधार पर स्थित था।

८. भगवान महावीर ने आचार धर्म के रूप में अहिंसा, समता और विचार शुद्धि के लिए अनेकान्त-विचार शैली का अनूठा दर्शन दिया।

९. भगवान महावीर के लाखों अनुयायी भक्त और करोड़ों प्रशंसक थे, वहाँ गौशालक जैसे विरोधी और जमालि जैसे विद्रोही भी पैदा हुए। गौशालक ५-६ वर्ष तक भगवान महावीर के साथ शिष्य रूप में रहा, किन्तु अन्त में वह महत्त्वाकांक्षा और लोक पूजा का शिकार होकर उनका विरोधी बन गया। स्वयं को सर्वज्ञ तथा

Scanned by CamScanner

तीर्थंकर कहने लगा। उसने एक बार क्रोध आवेश में आकर भगवान महावीर को भस्म करने का दुस्साहस भी किया, किन्तु तीर्थंकर की महान् अतिशायिनी शक्ति के समक्ष वह परास्त ही रहा। किन्तु क्षमावीर महावीर ने फिर भी गौशालक को आत्म-शुद्धि करने की प्रेरणा दी।

परिनिर्वाण

भगवान महावीर ने जीवन के अंतिम ७२वें वर्ष में पावापुरी (आपापापुरी) के राजा हस्तिपाल की प्रार्थना स्वीकार कर वहाँ चातुर्मास किया, वही उनके जीवन का अन्तिम चातुर्मास था। चातुर्मास काल के साढ़े तीन मास लगभग बीत जाने पर भगवान महावीर ने देखा कि अब देह त्यागकर निर्वाण का समय निकट आ गया है। गणधर गौतम का महावीर के प्रति अत्यधिक अनुराग था। निर्वाण के समय पर गौतम अत्यधिक रागग्रस्त न हों, इस कारण भगवान महावीर ने कार्तिक अमावस्या के दिन उन्हें अपने से कुछ दूर सोम शर्मा नामक ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिए भेज दिया।

कार्तिक अमावस्या के दिन[1] भगवान ने छट्ठ भक्त–दो दिन का, उपवास किया। समवसरण में विराजकर १६ प्रहर तक जनता को अपना अन्तिम उपदेश दिया। जो उत्तराध्ययन सूत्र, विपाक सूत्र आदि के रूप में प्रसिद्ध है।

कार्तिक अमावस्या की मध्य-रात्रि के पूर्व ही भगवान महावीर ने समस्त कर्मों का क्षय कर देह त्यागकर निर्वाण प्राप्त किया। कुछ क्षणों के लिए समूचे संसार में अंधकार छा गया।

देवाताओं ने मणिरत्नों का प्रकाश किया। मनुष्यों ने दीपक जलाकर अंधकार दूर कर भगवान महावीर के अंतिम दर्शन किये। उसी निर्वाण दिवस की स्मृति में दीपमालिका पर्व भगवान महावीर की निर्वाण ज्योति के रूप में "ज्योतिपर्व" की तरह मनाया जाता है।

भगवान महावीर के निर्वाण के समाचार सुनते ही मोहग्रस्त गणधर गौतम भाव-विह्वल हो गये। किन्तु फिर शीघ्र ही वे वीतराग चिन्तन में आरूढ़ हो गए। आत्मोन्नति की श्रेणियाँ पार कर उन्हें प्रातःकाल केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

देवताओं और मनुष्यों ने एक साथ मिलकर भगवान महावीर का निर्वाण उत्सव और गणधर गौतम का कैवल्य महोत्सव मनाया।

Scanned by CamScanner